छत्तीसगढ़ के गाँधी

पं. सुंदरलाल

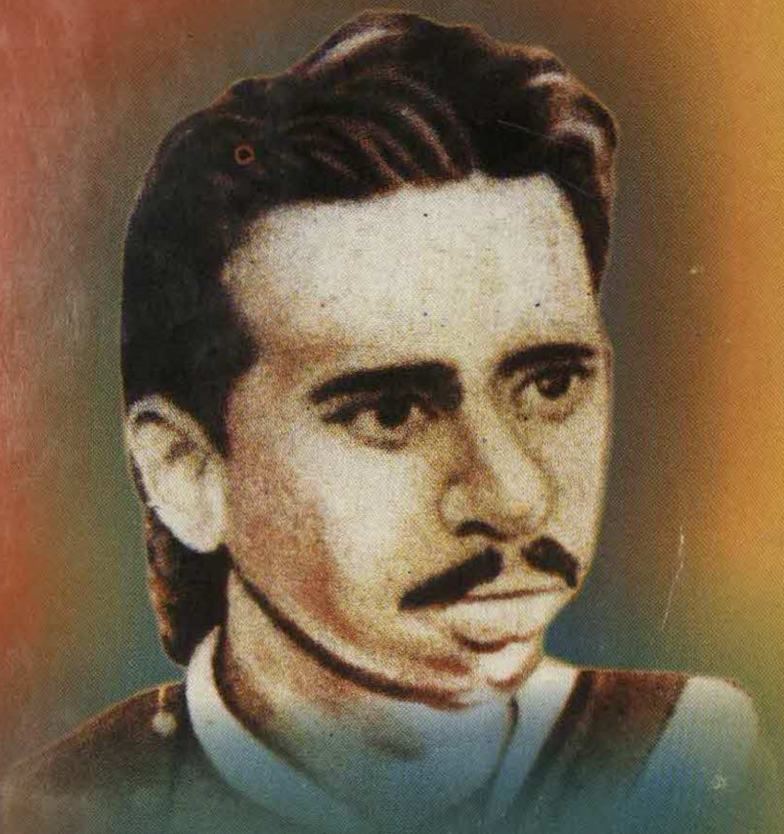

संपादक

डॉ. चित्त रंजन कर

छत्तीसगढ़ की उर्वरा भूमि न केवल वन-संपदा, खनिज-संपदा एवं जल-संपदा के लिए सुविख्यात है, बल्कि अपनी सांस्कृतिक विरासत की दृष्टि से भी काफी समृद्ध है। छत्तीसगढ़ की यह वही यशस्वी धरा है, जिसने एक ओर तो श्रम-शक्ति और कृषि-संस्कृति का विकास किया तो दूसरी ओर वह ऋषियों और मुनियों की तपश्चर्या का केन्द्र भी बनी। मर्यादा पुरुषोत्तम राम की माता कौशल्या का अवतरण इसी भूमि पर हुआ था। जगत्-जननी सीता या यों कहें राम द्वारा निर्वासित सीता ने यहीं अपने दोनों पुत्रों- लव और कुश को जन्म देकर राम के वंश को अपने लहू से सींचा था और उन्हें इतना सशक्त बनाया था कि राम भी अपने पुत्रों के सम्मुख खड़े न हो सके । छत्तीसगढ़ की भूमि इतनी पावन है कि इसके साथ एक के बाद एक अनेक स्वर्णिम पृष्ठ इतिहास और संस्कृति के जुड़ते गए और आगे आने वाली पीढ़ी को निरंतर एक परम्परागत सांस्कृतिक पृष्ठभूमि नैसर्गिक रूप में प्राप्त होती चली गई। यही कारण है कि इस धरा को अनेक महान् विभूतियाँ उपलब्ध हुईं और इन्हीं में से एक थे पं. सुन्दरलाल शर्मा, जिन्हें अपने महान् व्यक्तित्व एवं कृतित्व के लिए तत्कालीन विद्वानों एवं जनमानस द्वारा यशस्वी और इतिहास रचने वाली टिप्पणियों, सम्मानजनक कथनों और आदर्श उपाधियों से विभूषित किया गया। आदर या सम्मान वस्तुतः व्यक्ति को नहीं, बल्कि उसके कार्यों एवं सेवाओं के लिए मिला करता है।

पं० सुंदरलाल शर्मा ग्रंथागार -

पं० रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय

रायपुर को उपयोगार्थ !

रमेंद्रनाथ मिश्र

26/04/2005 प्रभारी अध्यक्ष

पं. सुंदरलाल शर्मा शोधपीठ

छत्तीसगढ़ के गाँधी

पं.सुंदरलाल शर्मा

•

संपादक

डॉ. चित्त रंजन कर

प्रभारी अध्यक्ष
पं.सुंदरलाल शर्मा शोधपीठ

पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय

रायपुर (छत्तीसगढ़)

कृति-स्वाम्य : पं. सुंदरलाल शर्मा शोधपीठ

प्रथम संस्करण : 2004

मूल्य : 100 रु.

प्रकाशक

कुलसचिव,

पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय,

रायपुर (छत्तीसगढ़)

मुद्रण-व्यवस्था

वैभव प्रकाशन

280,उद्‌भव, सेक्टर-4,

पं. दीनदयाल उपाध्याय नगर,

डगनिया, रायपुर (छत्तीसगढ़)-492010

फोन - 2262338

अनुक्रम

दो शब्द प्रो. बी.पी.चन्द्रा, कुलपति 5

संपादकीय डॉ. चित्त रंजन कर 8

1. पं. सुंदरलाल शर्मा : परिचय - हरि ठाकुर 9
2. पं.सुंदरलाल शर्मा एवं महात्मा गाँधी - आचार्य सरयूकांत झा 15
3. राष्ट्रीय जागरण के प्रकाशपुंज पं. सुंदरलाल शर्मा - केयूर भूषण 20
4. छत्तीसगढ़ में राष्ट्रीय आंदोलन के प्रणेता पं. सुंदरलाल शर्मा - ललित मिश्रा 23
5. पं. सुंदरलाल शर्मा अउ ओकर करम-क्षेत्र धमतरी - डॉ. प्रभंजन शास्त्री 25
6. पं. सुंदरलाल शर्मा और धमतरी - त्रिभुवन पांडेय 30
7. पं. सुंदरलाल शर्मा : विद्वानों के विचार एवं टिप्पणियाँ - श्रीमती शांति यदु 35
8. पं. सुंदरलाल शर्मा : छत्तीसगढ़ में दलित-चेतना के संवाहक - डॉ. परदेशी राम वर्मा 41
9. दलित मुक्ति चेतना के संवाहक पं. सुंदरलाल शर्मा - डॉ. बिहारी लाल साहू 45
10. पं. सुंदरलाल शर्मा के अवदानों का मूल्यांकन - आशिष सिंह 50
11. स्वतंत्रता-सेनानी पं. सुंदरलाल शर्मा की साहित्य-साधना - डॉ. सविता मिश्रा 57
12. छत्तीसगढ़ी काव्य का मंगलाचरण - डॉ. बलदेव 60
13. पं. सुंदरलाल शर्मा का छत्तीसगढ़ी-साहित्य में योगदान - डॉ. जीवन यदु 79
14. छत्तीसगढ़ का एक्टिविस्ट कवि - डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव 95
15. क्रांतिधर्मा कवि पं. सुंदरलाल शर्मा - डॉ. चित्त ंजन कर 100

16. स्वतंत्रता संग्राम में ''श्रीकृष्ण जन्म स्थान समाचार पत्र'' की भूमिका
- डॉ. रमेन्द्रनाथ मिश्र 104

17. पं. सुन्दरलाल शर्मा और स्वतंत्रता आंदोलन - डॉ. रामकुमार बेहार 108

18. छत्तीसगढ़-मित्र में पं. सुंदरलाल शर्मा के पत्र - डॉ. सुधीर शर्मा 112

19. छत्तीसगढ़ी-स्वाभिमान के गौरव - नन्दकिशोर तिवारी 115

20. कभी-कभी पैदा होते हैं पंडित सुन्दरलाल - डॉ. चित्त रंजन कर 118

21. छत्तीसगढ़ी के आदिकवि पं. सुंदरलाल शर्मा
एवं 'दानलीला' - मुकुंद कौशल 120

22. छत्तीसगढ़ का नवजागरण और दानलीला - डॉ.गोरेलाल चंदेल 123

23. पं. सुन्दरलाल शर्मा का साहित्यिक परिचय - डॉ. सत्यभामा आड़िल 132

24. छत्तीसगढ़ी पत्रकारिता के जनक व अग्रदूत
पं. सुन्दरलाल शर्मा - जागेश्वर प्रसाद 145

पं. सुंदरलाल शर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

■ प्रो. बी.पी.चंद्रा

कुलपति

भारत की रत्नगर्भा वंसुधरा को धन्य करने वाले पं.सुंदरलाल शर्मा का जन्म एक ऐसे ऐतिहासिक नगर में हुआ, जिसे लोग 'छत्तीसगढ़ का प्रयाग' कहते हैं। यह प्रयाग वस्तुत: तीन नदियों के संगम का ही पर्याय नहीं है, अपितु हमारी भारतीय संस्कृति के उन्नयन के लिए अनिवार्य तीन तत्वों का भी संगम है- ज्ञान, इच्छा और क्रिया। पं. सुंदरलाल शर्मा ने तत्कालीन ब्रिटिश पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए स्थानीय एवं आंचलिक स्तर पर राष्ट्रीय महत्व और गौरव की भूमिका निभाई।

पं.सुंदर लाल शर्मा का जन्म भले ही संभ्रांत ब्राह्मण-परिवार में हुआ, परंतु उन्हें औपचारिक शिक्षा की सुविधा नहीं मिली। फलस्वरूप प्राथमिक स्तर की शिक्षा के पश्चात् स्वाध्याय को ही ज्ञान-प्राप्ति का अवलंबन बनाया। यह सच है कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता, परंतु यह भी सच है कि एक-एक से अनेक होते हैं, और फिर स्वतंत्रता-पूर्व भारतीय ग्रामीण अशिक्षित भोली जनता को प्रेरित-उत्साहित करने के लिए जिस मेधा और आत्मविश्वास की आवश्यकता थी, वह स्वाध्यायमूलक ज्ञान के बिना संभव नहीं था। सुंदरलाल शर्मा जी ने घर पर ही संस्कृत, बँगला, मराठी, उड़िया, अँगरेज़ी, अरबी, फ़ारसी, आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया और यह सिद्ध कर दिया कि अपनी मातृभाषा को भली-भाँति जानने के लिए अन्य भाषाओं का ज्ञान कितना स्पृहणीय है। कदाचित् इसी कारण उन में वैचारिक उदारता थी, जिस से वे हर वस्तु, हर व्यक्ति तथा हर परिस्थिति को खुली आँख से और खुले दिमाग़ से देखते थे। इसी ज्ञान की महिमा से उन्होंने जाति, धर्म, भाषा, लिंग, एवं क्षेत्रीयता की संकीर्णता को तोड़ कर दलित-शोषित जातियों को गले लगाया और ज़मीदारी और ब्राह्मणत्व की उच्चता को सिद्ध कर दिखाया कि जो जितना बड़ा होता है, वह उतना ही उदार होता है। इस के सुपरिणाम से वे आश्वस्त थे कि दलित-शोषित लोगों का मनोबल बढ़ेगा

और वे स्वतंत्रता-संग्राम के सच्चे सिपाही बनेंगे। इसी प्रकार, अपने आस-पास की समस्याओं को हर बड़ी व्यापक समस्याओं की भव्यता से प्राय: ओझल कर देते हैं, परंतु पं. शर्मा ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने कंडेल नहर सत्याग्रह, सिहावा जंगल सत्याग्रह आदि के माध्यम से जन-जागरण अभियान का सफलता से निर्वहण किया, भले ही उन्हें कारावास की सजा भुगतनी पड़ी। यही नहीं, अपने बहुत-से खेत भी इस यज्ञ में स्वाहा हो गए, परंतु उनकी उत्कट इच्छा-शक्ति और कर्म-निष्ठा के समक्ष सब कुछ गौण था।

समाज-सुधार और साहित्य-सेवा पं. सुंदरलाल शर्मा की देश-भक्ति के अभिन्न अंग थे। उन्होंने अपने समय में छत्तीसगढ़ की जनता को जगाने के लिए छत्तीसगढ़ी भाषा को माध्यम बनाया, जिसमें रचित उनकी 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' की ऐतिहासिक भूमिका रही। छत्तीसगढ़ी के साथ-साथ हिंदी में भी काव्य-रचना करके पं.सुंदरलाल शर्मा ने राष्ट्रीयता के व्यापक लक्ष्य को चरितार्थ किया और न केवल स्वयं इस कार्य और प्रवृत्ति के उपासक बने, बल्कि एक 'कवि-समाज' की सामूहिक चेतना भी सक्रिय हुई। पं. शर्मा ने कविता, नाटक, आदि के द्वारा जन-जन में राष्ट्र-प्रेम की ज्योति प्रज्वलित की। तात्पर्य यह है कि पं. सुंदरलाल शर्मा ने साहित्य को समाज और देश के लिए अपनाया, केवल कवि या साहित्यकार के रूप में समादृत होने के लिए नहीं। यह आदर्श उदात्त तो है, परंतु इसे केवल त्याग और समर्पण की वृत्तियाँ ही निभा सकती हैं, जिनके धनी थे पं. सुंदरलाल शर्मा। विदेशी शक्तियों के सम्मुख निर्भीक, निडर व्यक्तित्व वाले पं. शर्मा ही यह कह सकते थे- ''सत्य के लिए मत डरो, चाहे जियो या मरो।'' इस आदर्श का निर्वाह उन्होंने आजीवन किया। अपनी प्रारंभिक ब्रजभाषा मिश्रित खड़ी बोली की रचनाओं में उन का यही आदर्श व्यक्त हुआ है-

''सब को परतीत जरूर ही है, हम झूठ बनाय कहेंगे नहीं
धड़ से सिरहू कटि जाय न क्यों, सच को कहने से डरेंगे नहीं
कवि सुंदर जू हम ठीक कहें- हमरे ब्रत जीवन करे यही
खुश होउ कोउ, रिस होउ कोउ, चपलूसी की चाल चलेंगे नहीं''

कथनी और करनी में ऐक्य के दर्शन उन के व्यक्तित्व में होते थे। उन का साहित्य मूलत: यथार्थ पर आधारित था। 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' में कृष्ण छत्तीसगढ़ी युवक के रूप में चित्रित हुए हैं, जो अँगरेज़ रूपी कंस की कुव्यवस्था का विरोध करते हैं। उन के समूचे काव्य में छत्तीसगढ़ की संस्कृति का जीवंत चित्रण किया है। राष्ट्रीयता

में आंचलिकता उसी तरह समा कर एक हो गई है, जिस प्रकार छोटी-बड़ी नदियाँ गंगा में मिलकर तद्रूप हो जाती हैं।

सचमुच पं. शर्मा का साहित्य तत्कालीन छत्तीसगढ़ के समाज का दर्पण है, जिस में न केवल तद्‌युगीन राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण प्रतिबिंबित होता है, बल्कि उसे सँवारने-सुधारने की उत्प्रेरणा भी उन के साहित्य में संदेश बनकर समाहित है।

पं. सुंदरलाल शर्मा जयंती के अवसर पर पं. सुंदरलाल शर्मा शोध-पीठ द्वारा प्रकाशित यह ग्रंथ पं. शर्मा के व्यक्तित्व और कृतित्व के विभिन्न आयामों को उद्‌घाटित करने की दिशा में एक कारगर क़दम साबित होगा, मैं आश्वस्त हूँ। देश-प्रेम केवल नारा नहीं है, उसे जीना पड़ता है और इस में संदेह नहीं कि पं. सुंदरलाल शर्मा ने अपना जीवन बख़ूबी जिया - फक्कड़-मस्तमौला जीवन, अपनी ज़मीन-जायदाद का होम कर के राष्ट्र की सेवा स्वयं तथा क्षेत्र की जनता को जगाने की दृष्टि से उन्हें 'छत्तीसगढ़ का गाँधी' कहना सर्वथा समीचीन है।

❖

संपादकीय

छत्तीसगढ़ के गाँधी पं. सुंदरलाल शर्मा

पं. सुंदरलाल शर्मा छत्तीसगढ़ के गाँधी थे। 'गाँधी' का यहाँ सामान्यीकरण नहीं, विशेषीकरण है, अर्थात् अगर छत्तीसगढ़ में गाँधी पैदा होते, तो वे पं. सुंदरलाल शर्मा होते। इसके अतिरिक्त, पं. सुंदरलाल का वैशिष्ट्य भी इस शीर्षक के माध्यम से व्यक्त होता है कि प्रचार-प्रसार की सुविधा से वंचित व्यक्ति अपनी निष्ठा, प्रतिभा, और जिजीविषा के बल पर किस प्रकार राष्ट्र-सेवा के लिए समर्पित हो जाता है।

जेल में रहकर हस्तलिखित पत्रिका द्वारा उन्होने जनजागरण का बीड़ा उठाया, यह अपने आप में एक मिसाल है। हरिजनोंद्धार, नहर-सत्याग्रह, जंगल-सत्याग्रह, वाचनालय-स्थापना, आदि से प्रमाणित उनका त्याग, तपस्या, दानशीलता, और कविताई उन्हें युग-युग तक उनको अमर रखने के लिए पर्याप्त है। उन्हीं के शब्दों में -

"सुंदर सुकवि कवितान पै कलान पै
गियान पै और दान पै जहान पै पसरगे।
टरगे यहाँ ते पै हूँ करगे कहाँ ते नाम
कीरति करोरन धरा के बीच धरगे।"

(श्रीरघुराज गुणकीर्तन)

- संपादक

पंडित सुंदरलाल शर्मा : परिचय

■ हरि ठाकुर

स्वाधीनता संग्राम के कुछ ऐसे भी सेनानी थे, जो मूलत: साहित्यकार थे, किंतु भारत माता को दासता की बेड़ियों से मुक्त करने के लिए उन्होंने साहित्य-सेवा से बढ़कर देश- सेवा और आज़ादी के आंदोलन को महत्व दिया। पं. माधवराव सप्रे, पं. सुंदरलाल शर्मा, पं. रामदयाल तिवारी, यति यतनलाल, यदुनन्दन प्रसाद श्रीवास्तव आदि इसी श्रेणी के साहित्यकार थे। सन् 1857 के पश्चात् भारतीय राजनीति तथा राष्ट्रीय जागरण का कार्य वस्तुत: महान साहित्यकारों तथा धुरंधर विद्वानों ने ही किया। गोखले, तिलक, लाजपतराय, रमेश चंद्र दत्त, अरविंद घोष आदि आज़ादी के आंदोलन के अग्रदूतों ने राजनीति में सक्रिय रहते हुए भी गंभीर लेखन का महत्वपूर्ण कार्य किया।

पं. सुंदरलाल शर्मा राजनीति में सन् 1905-06 में सक्रिय हुए। उसके पूर्व वे पूर्णत: साहित्य को समर्पित थे। सन् 1990 के पूर्व राजिम साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र था। विश्वनाथ प्रसाद दुबे, ठा. दामोदर सिंह वर्मा, प्यारेसिंह वर्मा पुजारी, क्षेमू प्रसाद शर्मा, गजाधर प्रसाद पौराणिक, प्यारेलाल दीक्षित आदि उस समय के प्रतिष्ठित कवि थे। ये सब राजिम निवासी थे। उस युग में संत कवि ठाकुर भोला सिंह भी फिंगेश्वर में दीवान होकर पहुँच गए थे। वे भी राजिम की गोष्ठियों में सम्मिलित होने लगे। सन् 1896-97 में ''राजिम कवि सभा'' का निर्माण हुआ। पं. सुंदरलाल शर्मा उसके मंत्री नियुक्त हुए। उस समय उनकी उम्र मात्र 17 वर्ष की थी।

पं. सुंदरलाल शर्मा का जन्म पौष अमावस्या विक्रम संवत् 1938 (सन् 1881) को ग्राम चमसुर में हुआ था। उनके पिता पं. जियालाल प्रसाद त्रिपाठी समृद्ध मालगुज़ार थे। पं. सुंदरलाल शर्मा की प्रारंभिक शिक्षा राजिम में हुई। प्राथमिक शिक्षा के पश्चात् उन्होंने घर में ही अँग्रेज़ी, संस्कृत, बंगाली, मराठी, उड़िया भाषाओं का अध्ययन किया। उनके घर में मराठा, केसरी तथा बंगला पत्र-पत्रिकाएँ आती थीं। उनके लेखों को पढ़कर उनमें भी साहित्यक रुचि जागृत हुई।

बाल्यकाल से ही शर्माजी में नाट्यकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला में रुचि थी, किन्तु उनकी प्रतिभा का विकास मुख्य रूप से साहित्य के क्षेत्र में हुआ। सन् 1898 में उनकी कुछ कविताएँ ''रसिक मित्र'' कानपुर से प्रकाशित हुई। इसे हम उनके जीवन की प्रथम प्रकाशित रचना मान सकते हैं-

यह पंथ विकट डिगन्त गत तकु अनत सुन खल तन धरें।
गति दमत चहुँ रन विशेष लागत कुमल जड़ सर्वस हरै ॥
जिय रमन बच भागहुँ तनक करू धरम कुमति जलाय कै ॥
हिय पूरि आस कुरि पुन हति रहु राम पहँ लपटाय कै ॥

पं. सुंदरलाल शर्मा ने छन्दों का गहन अध्ययन किया था। वे पिंगल शास्त्र के पण्डित थे। वार्णिक छंदों का उन्हें अच्छा अभ्यास था। शर्मा जी ने ब्रजभाषा, खड़ी बोली तथा छत्तीसगढ़ी तीनों भाषाओं में रचनाएँ कीं। गद्य तथा पद्य दोनों में उनकी समान गति थी, किंतु, उनकी ख्याति कवि के रूप में ही अधिक हुई। उन्होंने 22 ग्रंथों की रचना की है जिनकी सूची इस प्रकार है -

1. राजिम प्रेम पीयूष (काव्य)	संवत् 1951
2. विक्टोरिया वियोग (काव्य)	संवत् 1958
3. विक्रम शिला कला (नाटक)	संवत् 1959
4. सीता परिणय (नाटक)	संवत् 1959
5. रघुराज गुण कीर्तन (काव्य)	संवत् 1959
6. करुणा पचीसी (भक्ति काव्य)	संवत् 1959
7. छत्तीसगढ़ी दानलीला (छत्तीसगढ़ी प्रबंध काव्य)	संवत् 1960
8. कवि विश्वनाथ प्रसाद (जीवनी)	संवत् 1961
9. प्रहलाद चरित्र (नाटक)	संवत् 1961
10. पार्वती परिणय (नाटक)	संवत् 1962
11. सच्चा सरदार (उपन्यास)	सवंत् 1965
12. ध्रुव चरित्र आख्यान (संगीत आख्यान)	संवत् 1965
13. उल्लू उदार (उपन्यास)	संवत् 1965
14. कंस वध (छत्तीसगढ़ी प्रबंध काव्य)	संवत् 1967
15. रामायण बालखंड (छत्तीसगढ़ी में)	संवत् 1968
16. राजिम क्षेत्र माहात्म्य	संवत् 1969
17. श्रीकृष्ण जन्म आख्यान	रचना तिथि अज्ञात
18. काव्यामृत वर्षिणी	रचना तिथि अज्ञात
19. स्फुट पद्य संग्रह	रचना तिथि अज्ञात
20. भजन संग्रह (प्रलाप पदावली)	रचना तिथि अज्ञात
21. सतनामी भजन माला	रचना तिथि अज्ञात
22. सद्गुरु वाणी	रचना तिथि अज्ञात

उपर्युक्त बाइस में से (1) श्री राजीव क्षेत्र माहात्म्य (2) श्री प्रहलाद चरित्र नाटक (3) श्री ध्रुव चरित्र नाटक (4) करूणा पचीसी (5) विक्टोरिया वियोग (6) श्री रघुराज गुण कीर्तन (7) प्रलाप पदावली (भजनसंग्रह) (8) छत्तीसगढ़ी दानलीला (9) सतनामी भजन माला पं. सुंदरलाल शर्मा की प्रकाशित कृतियाँ हैं। शेष अप्रकाशित हैं।

पं. सुंदरलाल शर्मा की कृतियों की सूची से स्पष्ट है कि उन्होंने चार नाटक, दो उपन्यास, एक जीवनी, छत्तीसगढ़ी में तीन प्रबंध-काव्य, दो संगीत-आख्यान लिखे। उनका संपूर्ण लेखन-काल सन् 1898 से 1912 तक था। इन पंद्रह वर्षों में उन्होंने 22 ग्रंथों का सृजन के अपनी अद्‌भुत काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया। उनकी काव्य-प्रतिभा की एक झलक प्रस्तुत करने के लिए 'करुणा पचीसी' के कुछ पद पर्याप्त हैं-

तब तो गजेन्द्र काज दँउरि पयदे पाँय,
दौरत दया के खानि वाहन निवारे ही।
सुन्दर सुकवि द्रौपदी की लाज राखिबे को,
कहुँ पीत पट कहुँ क्रीट फेंक डारे ही॥
कान में भनक कछु तनक सुदामै कर,
परत बिहाल हवै के सुरत बिसारे हौ।
सोई भगवान हौ कि कोऊ और नयो हो आप,
करूणा निधान धौं सुभाव फेर डारे ही॥
कैसे ह्वै हो नाग तें बचायणे नन्दराज जू को,
कैसे दुख द्वन्द्व दावानल के अहारी हौ।
सुन्दर सुकवि परतीत होत नाहीं नेक,
कैसे द्रौपदी के धों सके बढ़ाय सारी हौ॥
कैसे शम्भू जू के चाप कौतुक उठाये आप,
कौन बल ते धौं आप संकट प्रहारी हौ।
रंचक हमारे जो पै बोझ न उठाय जात,
तुम ही बताओं अरे! कैसे गिरिधारी हौ?
करत न ध्यान दान देत ना गरीबन को,
अति ही उजडु बेबकूफन की सरनाम।
सुन्दर कवि सुकवि योग यज्ञ को चलावै कौन,
भूल सपनेहु नहिं लेत है तिहारो नाम॥
ज्यों त्यों करि पेट परिवारन को पालिबो औ,

गप्प सप्प करिबो ही रात दिन जा के काम।
व्याध कैसो बाप, अजामिल कैसो आजा हाय,
ऐसे महापातकी को कैसे अपनै हों राम ?

'करुणा पचीसी' में ऐसे पचीस छंद हैं। वस्तुतः पं. सुंदरलाल शर्मा की यह 'विनय-पत्रिका' है। करुणा पचीसी में उनके काव्य-व्यक्तित्व का अत्यंत सात्विक उत्कर्ष है। स्वाधीनता संग्राम सेनानी और प्रखर राजनेता होने के कारण पं. सुंदरलाल शर्मा के साहित्य का समुचित मूल्यांकन की ओर किसी का ध्यान नहीं गया अथवा जानबूझकर उपेक्षा की गई। कविताओं में वे 'सुन्दर कवि' उपनाम का प्रयोग करते थे। कुछ स्थानों पर 'द्विजराज' उपनाम भी मिलता है।

'श्री ध्रुव चरित्र आख्यान' को हम संगीत-रूपक कह सकते हैं। इस छोटी-सी पुस्तिका में उन्होंने शिखरणी, दोहा, छप्पय, सवैया, उड़ियाना, भुजंगप्रयात, वसंत तिलका, तोटक, बनजारा, मन्दक्रांता आदि छंदों का प्रयोग कर के यह सिद्ध कर दिया है कि पिंगल शास्त्र का उन्हें गहन अध्ययन तथा अभ्यास था। इस पुस्तक में भजन और लावनी शैली के गीत भी हैं।

(कवि के रूप में पं. सुंदरलाल शर्मा की ख्याति उनकी छत्तीसगढ़ी कृति "छत्तीसगढ़ी दानलीला" से मिली। इस प्रबंध-काव्य की रचना उन्होंने सन् 1903 में की थी, किंतु प्रकाशित बहुत बाद में हुई) यह छत्तीसगढ़ी भाषा का प्रथम प्रबंध-काव्य है। इसकी कथा श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध पर आधारित है। श्री कृष्ण की बाल-लीला का एक अंश इस ग्रंथ में काव्य-रूप में प्रस्तुत है। श्री कृष्ण गोपियों के साथ जो लीला करते हैं, उसका बड़ा मोहक वर्णन है। मैं इसे छत्तीसगढ़ी के उच्चकोटि के काव्य ग्रंथों की श्रेणी में स्थान देता हूँ। 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' में भाव-चमत्कार देखने लायक है। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

आज अरे ठौंका पहुँचायेव। गंज दिना में मैं सपड़ायेंव ॥
बघवा हाथी लादे जाथौं। छुच्छा ठेंगवा मोला चुमाथौ ॥
आनी बानी माल रखे हौं। कुच्छू नइए अइसन कहिथौ ॥
तुम्ही बतावौं कइसे बनिहै। थोरिक हो तो कोनो मनिहै ॥
मोती केरा कँवल लदायेव। हँडुला सोन अतेक गढ़ायेव ॥
तेमा फेर समुद राखे हौ। पंड़की अउर परेवा है हो ॥
कुन्दरू दरमी धनुवा लायेव। सूरूज चंदा घलो लदायेव ॥
साँप घलाय सबो पोसे हौ। सबो जागत आज मोर दे हौ ॥

श्याम गोपियों से कहते हैं कि पहले जगात दो, फिर आगे बढ़ना। तुम लोगों ने

बाघ, हाथी लाद रखा है। मुझे अँगूठा दिखा कर आगे नहीं बढ़ सकते। तुमने किसम-किसम के माल रखे हैं। उस पर कुछ नहीं है, ऐसा कहती हो। यह नहीं चलेगा। थोड़ा-बहुत माल होता, तो छोड़ देता। मोती, केला, कमल के फूल रखे हुए हो, सोने के कलश हैं, समुद्र है, पड़की और कबूतर हैं, कुंदरू और अनार हैं, सूरज और चंद्रमा है साँप भी पाल रखा है। इतना माल रखकर भी बिना जगात पटाये चली जाना चाहती हो।

गोपियाँ श्याम का आरोप सुनकर आश्चर्य में पड़ जाती हैं। वे पूछती हैं-

"बघवा बन में रहिथे गोई। तेला भला पकरथे कोई ?
तौनेला हमर मेर बताथै। कइसे कइसे के डेरूवाथै ?
हाथी ला हम कहाँ लुकायेन ? हंडुला सोन कहां ले पायेन ?
कोनो समुद ला लाये सकथे ? तेला भना कहाँ ले रखथै ?
चंदा सुरूज सरग में होथै। तेला कैसे इहाँ घटोयै ?
कुंदरू दरमी कहाँ लदायेन ? पंड़की सुवा कहाँ टरकायेन ?
मोती केरा कँवल कहाँ है ? तभ्भे बनिहै जभे देखाहै ॥
कइसे-कइसे के गोठियाथै ? हमला कमठा तीर बताथै ॥
बिखहर साँप कहाँ पहुँचायेन ? तेला हम कइसे के लायेन ?"

काव्य की दृष्टि से "छत्तीसगढ़ी दानलीला" का अपना महत्व है। रूपक और उपमाओं का कोश है। छत्तीसगढ़ी मुहावरों तथा उक्तियों का भी सुन्दर उपयोग हुआ है, यथा "सुइन मेर पेट नइ लुकाय, ठेंगवा चुमाना, भिंभोरा फोर के जनमिन, तुम्हार जौहर हो जातिस, लग्हो लेना, अँगरी फोरना, छाती लगाना, रसदा चलत में ओरंझत है आदि।" एक दोहा देखिए-

चौंके रहेव अघात तुम छेंवट आयेव ठाँव।
कतको हिरना कूदि है, परिहे भुंय्या पाँव ॥

श्याम गोपियों से कहते हैं - अब रास्ते पर आई। हिरन कितनी भी चौकड़ी भरे, आखिर भूमि पर पाँव तो रखेगा ही। ऐसी अनूठी उक्तियों से यह कृति भरी पड़ी है।

दानलीला श्रृंगार रस-प्रधान ग्रंथ है, किंतु उसका पर्यवसान शांत रस में हुआ है-

अपन भगत खातिर भगवाना। करथै चरित अनेक विधाना ॥
जेखर जइ सन भाव रथै मन। तेला तइसन मिलथै मोहन ॥

सन् 1906 में सूरत काँग्रेस से लौटने के पश्चात् पं. सुंदरलाल शर्मा ने अपना सारा समय और पूँजी स्वदेशी आंदोलन में लगा दी। परिणामत: उनके दो गाँव बिक गए

और हज़ारों रुपयों के क़र्ज़ में लद गए। इसके पश्चात् वे देश-सेवा मे ऐसे लीन हुए कि साहित्य-सेवा और ईश्वर-सेवा को भी भूल गए। मातृभूमि की सेवा ही उनके लिए ईश्वर-सेवा थी। उन्होंने अछूतोद्धार के क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य किए। इस कार्य के लिए ब्राह्मण वर्ग का उन्हें कोप-भाजन बनना पड़ा, अपमान सहने पड़े। महात्मा गाँधी ने अछूतोद्धार के क्षेत्र में उन्हें अपना गुरु माना था)

सन् 1922 में उन्हें असहयोग-आंदोलन के सिलसिले में एक वर्ष की जेल की सजा हुई। उनकी साहित्यिक प्रवृत्ति जेल-जीवन में पुन: जागृत हुई। जेल में वे "श्री कृष्ण जन्म स्थान पत्रिका" हस्तलिखित निकालते थे। प्रत्येक अंक में 18 से 20 पृष्ठ होते थे। मूल पृष्ठ पर उन्हीं का बनाया हुआ चित्र होता था। जब वे जेल में थे, तब काँग्रेस के कुछ नेता "कौंसिल प्रवेश" का आंदोलन चला रहे थे। महात्मा गाँधी ने इसका विरोध किया था। पं. सुंदरलाल शर्मा भी कौंसिल प्रवेश के विरोधी थे। अपने विरोध को उन्होंने इस शब्दों में प्रगट किया था-

"देख-देख खुश हो रहे, कौंसिल का प्रस्ताव
प्लीडर लीडर लोग जो, दे मूँछों पर ताव।
मजा है यार, उड़ेंगे गुलछर्रे॥
जेल-जाल का डर नहीं, चमकेगा रूजगार
कूद-नाच नेता बड़े, बनने से दरकार।
भला हो दास, करोड़ बरस जीवैं॥
पड़े जेल सड़ते रहे, नेता लाख हजार
कौंसिल की कुर्सी मिली, होगा बेड़ा पार
रेजुलेशन को चट पट धर धमके॥"

पं. सुंदरलाल शर्मा अभिजात वर्ग के नेतृत्व को खोखला और आडंबर-युक्त समझते थे। जीवन भर उन्होंने अभिजात वर्ग के नेतृत्व के खिलाफ़ संघर्ष किया और संघर्ष करते-करते मर गए।

(उनका जीवन त्याग और तपस्या का जीवन था। आज़ादी का आंदोलन जितना प्रखर होगा गया, पं. सुंदरलाल शर्मा का काव्य-स्रोत सूखता चला गया। बार-बार जेल जाने, आंदोलन का नेतृत्व करने तथा अछूतोद्धार-जैसे कार्यों में सक्रिय रहने के कारण साहित्य-सृजन के लिए उनके पास अवकाश नहीं था) सन् 1893 से 1912 तक उन्होंने 22 ग्रंथों की रचना की। उसके पश्चात् (उन्होंने साहित्य से सन्यास ले लिया। दिनांक 28.12.1940 को इस महान स्वतंत्रता सेनानी, अक्खड़ संत और उद्‌भट कवि का निधन हो गया)

❖

पं. सुंदरलाल शर्मा एवं महात्मा गाँधी

▪ आचार्य सरयूकान्त झा

जब कभी हम भारत की आत्मा की खोज करते हैं, तब हमें वहाँ ऐसे व्यक्तित्व दिखाई पड़ते हैं, जिन्होंने देश और समाज के लिए अपना सबकुछ लुटा दिया। अपने लिए कुछ भी बचाकर रखने की बात कदाचित् उन्हें ध्यान में ही नहीं आई। उनका परिवार भी उनके इस समर्पण में उन के साथ ही था। ऐसे लोगों की लम्बी परंपरा हमारे यहाँ दिखलाई पड़ती है - अपना घर फूँकने वाले आदि शंकराचार्य, फक्कड़ कबीर, संत तुलसी, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, पं. सुंदरलाल शर्मा अपनी आभा में चमकने वाले इन नक्षत्रों की कतार की कतार हमारे देश के आकाश में शोभायमान हैं। भारत आज भी ऋषि-सभ्यता का ही हिमायती है। आज के आपाधापी के युग में जहाँ आस्था का संकट काली घटा के समान उन आकाशीय पिण्डों को ढँकने की तैयारी करता प्रतीत होता है, वहाँ हम आश्वस्त है। यह अस्थायी वितण्डावाद भारत को विचलित नहीं कर सकता। यह महादेश अपने महामानवों के त्याग की सुदृढ़ नींव पर खड़ा हुआ है। हमारे इतिहास और पुराण साक्ष्य हैं इसके ऊपर बराबर सांस्कृतिक हमले होते रहे हैं, पर इसने सभी को धीरज और साहस के साथ सहा है, सदैव अडिग रहा है और संकट के टलते ही फिर माथा ऊँचा कर उठ खड़ा हुआ है।

छत्तीसगढ़ इसी महादेश का हृदयस्थल है, जहाँ उत्तर और दक्षिण का मिलन होता है। यह अपने आनबान में निराला है। यह सदैव से अपनी रीति-नीति में स्वतंत्रचेता रहा है। सारे भारत को रौंदनेवाले आतताइयों का कभी यहाँ वर्चस्व नहीं हुआ। यहाँ कभी मुसलमानों का राज्य नहीं हुआ। इसीलिए यहाँ कभी जातीय दंगे नहीं हुए। सर्वधर्मसमभाव की मिसाल छत्तीसगढ़ है। हिलमिल कर रहने में इसका सानी नहीं है। यदि हम पुरातन काल के छत्तीसगढ़ की खोज करें, तो हमें एक अद्भुत सत्य का दर्शन मिलता है। यहाँ की धार्मिकता और दार्शनिकता अद्वितीय रही है। यह चिर पुरातन होते हुए भी कभी इसने नवीनता के प्रति दुराग्रह नहीं रखा है। जो भी नया है, उपयोगी है, उसे छत्तीसगढ़ ने आगे बढ़ कर अपनाया है। प्रारंभिक बौद्ध युग, शैव युग, शाक्त युग, वैष्णव युग आदि का इतिहास हमारे सामने है। यहाँ एक से एक बढ़कर दार्शनिक, शिक्षा शास्त्री, धर्मधुरन्दर, भगवत्पाद एवं समाज-सेवक हुए हैं, जिन्होंने पूरे देश और देश से बाहर जाकर भारतीय संस्कृति का वैभव स्थापित किया था। कभी देश-देशान्तर

के पर्यटक भी यहाँ आकर यहाँ की प्रशंसा करते रहे हैं। यहाँ के कृती व्यक्तियों ने जनता की सेवा में अपनी सम्पत्ति और जीवन को होम करने में अपना गौरव माना है। उन्होंने अपनी सेवा को भी समय अपने लाभ के लिए उपयोग करने को महापाप समझा। ऐसे व्यक्तियों को भले ही सामान्य लोग भूलते चले जा रहे हैं, पर ऐसे भी कुछ कृती पुरुष हुए हैं, जिन्होने ऐसे व्यक्तियों के त्याग और देश के नेतृत्व की क्षमता को पहचान कर उनका बड़े गौरव के साथ उल्लेख किया है। इनमें अन्यतम पण्डित सुंदरलाल शर्मा है। गुणी व्यक्तियों के द्वारा इन की भरपूर प्रशंसा हुई है।

ऐसे व्यक्तियों में सब से महान महात्मा गाँधी हुए हैं। अपनी रायपुर-यात्रा में उन्होंने उन्हें अपने गुरु का गौरव ही नहीं दिया, वरन् उससे आगे बढ़कर भारतीय स्वतंत्रता के अभियान में उनके नाम और काम का बड़ा अच्छा उपयोग भी किया। उनकी प्रकिया को उन्होने भारतीय काँग्रेस का मूलमंत्र बनाया। हमारा संकेत पं. सुंदरलाल शर्मा की प्रक्रिया की ओर है। जिन्हें महात्मा गाँधी ने अपने अछूतोद्वार और किसान आन्दोलन कार्यक्रम का गुरु निरूपित किया था। उसके पूर्व किसानों के द्वारा अँग्रेजी शासन के विरुद्ध पं. सुंदरलाल शर्मा के नेतृत्व में किया गया कण्डेल का सफल सत्यागह भी गाँधी जी के लिए मार्ग निर्देशक बना था। बात सन् 1936-37 की है। यहाँ कण्डेल सत्यागह के नाम से रायपुर ज़िले के धमतरी क्षेत्र में एक बड़ा सत्याग्रह हुआ था। कण्डेल के किसानों ने पं. सुंदरलाल शर्मा के नेतृत्व में अँग्रेज़ों के कराधान के विरुद्ध बड़ा भारी असहयोग आन्दोलन छेड़ा था। किसानों ने जेल जाना स्वीकार किया पर अँग्रेज शासन के द्वारा गलत तरीके से कण्डेल गाँव पर लगायी गयी सामूहिक जुर्माने की राशि को न देने का सामूहिक निर्णय लिया और इस पर आखिर तक डटे रहे। किसानों की सभा ने यह भी निर्णय लिया कि गाँधी जी को यहाँ लाने के लिए पं. सुंदरलाल शर्मा ही जायें। पं. सुंदरलाल शर्मा इसके लिए सहर्ष तैयार हो गए। उस समय उन्हें क्या मालूम था कि उन्हें इसके लिए लगभग भूमंडलीय परिक्रमा करनी पड़ेगी। ·

उस समय महात्मा गाँधी असहयोग-आन्दोलन और सत्यागह में प्रगति लाने के लिए पूरे देश का तूफ़ानी दौरा कर रहे थे। उनके बारे में पता लगाकर जब तक पं. सुंदरलाल शर्मा वहाँ तक पहुँचते, तब तक गाँधी जी कहीं दूसरी जगह के लिए, प्रस्थान कर जाते। उनके पीछे-पीछे पं. सुंदरलाल शर्मा जी ही लगे रहे। वे बड़े जीवट के दृढ़ निश्चयी पुरुष थे। जब किसी बात को ठान लेते, तो चाहे जो कुछ हो जाए, उससे पीछे

○ (लोकाक्षर में प्रकाशित मार्च 2000 का अविकल अनुवाद स्वयं लेखक द्वारा)

नहीं हटते थे। उनका सिद्धान्त था - 'कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि' - या तो कार्य पूरा करूँगा या इस शरीर का ही अन्त करूँगा। वे भी गाँधी जी के यात्रा-पथ में पूरे देश का चक्कर लगाने लगे। अनेक दिन ही नहीं, महीनों के बाद आखिरकार वे गाँधी जी को पकड़ पाये। दोनों की भेंट मानों दृढ़ निश्चयी भीष्म के साथ महापराक्रमी परशुराम का मिलन था। गाँधी जी सुंदरलाल शर्मा की दृढ़ता से बड़े प्रभावित हुए - गदगद हो गए। रायपुर आने के लिए उन्हें सहमति तो देनी ही थी। गाँधी जी को अपने असहयोग आंदोलन के लिए कण्डेल सत्यागह एक बड़ा अच्छा मुद्दा हाथ लग गया था। यह तो दो महारथियों का मिलन था। इस सुयोग को वे भला क्यों छोड़ते। अँग्रेज़ों के विरुद्ध इतने लंबे समय का असहयोग आन्दोलन, किसानों का सत्याग्रह और अँग्रेज़ो की अन्यायपूर्ण कार्यशैली का पदार्फाश -सब कुछ पण्डित जी ने गाँधी जी के सामने साफ-साफ बयान कर दिया। महात्मा गाँधी ने इस सत्याग्रह के लिए अपनी पूर्ण सहमति ही नहीं दी, अपनी पूरी भागीदारी के लिए भी वे तैयार हो गए। पं. सुंदरलाल शर्मा गाँधी जी को लेकर बड़े आदर-सम्मान के साथ रायपुर के लिए रवाना हुए। रास्ते में अपने आंदोलन के सिलसिले में गाँधी जी रुकते-रुकते आ रहे थे और इधर उनके रायपुर आगमन की बात जंगल में आग की तरह निरंतर उग्र रूप धारण करती जा रही थी। रायपुर के शासक-वर्ग में बड़ी खलबली मची हुई थी। जंगल की दावाग्नि में घिरे प्राणियों के समान उन की गति हो गई थी - साँप-छछुन्दर की तरह, उन्हें रास्ता नहीं दिखाई पड़ रहा था। आखिर शरणागति का रास्ता ही उन्हें ठीक दिखलाई पड़ा। जब तक गाँधी जी रायपुर पहुँचते, तब तक शासकों ने हार मानते हुए ज़ुर्माने की राशि वसूलने संबंधी अपने अन्यायपूर्ण आदेश को निरस्त कर दिया। गाँधी जी और शर्मा जी ने उनके इस 'त्राहि माम्' की गुहार को सुना और उन्हें क्षमा कर के आंदोलन को वापस ले लिया। गाँधी जी का असर कुछ ऐसा ही था। अब तो एक नया गाँधी उनके साथ आ मिला था। शासकों की रात की नींद खराब थी। आंदोलन की वापसी मानो शरणागत को अभयदान था।

गाँधी जी के रायपुर पधारने का बड़े ज़ोर से स्वागत हुआ। सभी जगह उन्हें घुमाया गया। हर जगह उनका जय-जयकार हो रहा था। पं. सुंदरलाल शर्मा हर जगह उनके साथ थे। उनकी फतह का झंडा हर जगह फहरा रहा था। अब पंडित जी का दूसरा बड़ा मुद्दा सामने रखा गया। पहले राजनैतिक मुद्दे की अपार सफलता से उत्साहित शर्मा जी ने गाँधी जी के साथ मिलकर दलित उद्धार के सामाजिक प्रश्न के हल करने का मार्ग भी खोज निकाला था। राजनैतिक असहयोग-आंदोलन के समान इस समस्या

पर भी दोनों एकमत थे। गाँधी जी अछूतोद्धार के सिलसिले में पहले भी सन् 1933 में रायपुर पधार चुके थे। उन्होंने अछूतों को मंदिर-प्रवेश कराया था। एक दलित कन्या के हाथ से जल लेकर उन्होंने उसके छींटे रायपुर की पुरानी बस्ती चौक में खड़े होकर सभी की ओर फेंके थे। जब जनता भाग खड़ी हुई थी, तो मंच पर खड़े होकर उन्होंने मानो मंत्र फूँके थे ''जो इन छींटों से डर गया, वह अँग्रेज़ों की गोलियों के सामने क्या ठहरेगा ?'' गाँधी जी की इस सिंह-गर्जना ने मानो भागती सेना के पैरों को जकड़ दिया था। वे लौट आए थे और गाँधी जी का दलितोद्धार कार्यक्रम पूर्णत: सफल हुआ था। इसी सामाजिक उद्धार के आंदोलन को पंडितजी कुछ दूसरे आयाम पर चला रहे थे। उनका कार्यक्षेत्र राजिम था, जो छत्तीसगढ़ का तीर्थराज प्रयाग है। यहाँ तीन नदियों का प्रत्यक्ष संगम है - यहाँ तीसरी नदी सरस्वती लुप्त नहीं है। यह बड़ा जाग्रत क्षेत्र है। छत्तीसगढ़ में उच्च वर्ग दलितों से कुछ दूरी बनाए रखते थे। यद्यपि सामाजिक उत्तरदायित्व में सबकी भागीदारी थी, फिर भी अलगाव तो था ही। पंडित सुंदरलाल शर्मा उस अंतिम दाग़ को भी धो देना चाहते थे। दलित वर्ग भी खान-पान में अनियंत्रित था। पंडितजी ने उन्हें इन कुरीतियों से अलग करने का नया तरीका निकाला। उन्होंने सबको बुलाकर राजिम के विशाल संगम-क्षेत्र एकत्रित किया। हज़ारों की संख्या में वे सब वहाँ आए, फिर उस पवित्र क्षेत्र में सबको स्नान करवाया, फिर उन्हें जनेऊ धारण करवाया और अंत में वचन लिया कि वे भविष्य में न तो मांसाहार करेंगे और न किसी भी प्रकार की नशे के वस्तु का व्यवहार करेंगे। जनेऊ पहनकर उन्होंने मानो अपना नया अवतार पाया था। उन्होंने अपने को उच्च वर्ग के समकक्ष माना। छत्तीसगढ़ के दलित-वर्ग ने अपने इस उद्धार को बहुत मान दिया है। अधिकांश आज भी जनेऊ धारण करते हैं और अपने या अपने पूर्वजों के पुण्य क्षेत्र में दिए गए वचनों का मान रखते हैं।

महात्मा गाँधी पंडित सुंदरलाल शर्मा के इस नए प्रयोग से बड़े प्रभावित हुए थे। उन्होंने राजिम क्षेत्र का दौरा कर के सबसे भेंट की थी और अपनी प्रसन्नता भी जाहिर की थी। दलितोद्धार की परिपाटी तथा कंडेल-सत्याग्रह को उन्होंने बड़ा मूल्यवान निर्धारित किया और इन दोनों को सफलतापूर्वक प्रस्तुत करने वाले पंडित सुंदरलाल शर्मा को अपने इस अभियान में अग्रणी पाकर उन्हें अपने गुरु का दर्जा दिया। गाँधी जी ने रायपुर के गाँधी चौक की महती सभा में पंडित जी को अपने पथ-प्रदर्शक गुरु के रूप में संबोधित भी किया था। इससे भी आगे बढ़कर उन्होंने अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी की कार्यशैली और उद्देश्यों में इन दोनों कार्यक्रमों को बड़ा महत्वपूर्ण स्थान दिया। भारत के राजनैतिक तथा सामाजिक उत्थान के तत्कालीन कार्यक्रमों में

अछूतोद्धार और किसान-सम्मेलनों को बड़ा ऊँचा स्थान दिया गया है। तत्कालीन विषयों पर अपना शोध प्रस्तुत करने वाले विद्वानों ने महात्मा गाँधी के जन-जागृति के कार्यों में इन दोनों अभियानों का बड़ा अच्छा गौरवगान किया है, पर इसमें छत्तीसगढ़िया पंडित जी के इन कार्यों में योगदानों को उल्लेखित करना आवश्यक नहीं माना गया। आज समय आ गया है कि पं. सुंदरलाल शर्मा के कालजयी व्यक्तित्व की चर्चा करते समय उनकी इस गौरव-गाथा का स्वर्णाक्षरों में उल्लेख हो।

डॉ. रमेन्द्र नाथ मिश्र ने सिद्ध किया है कि पंडित जी का जन्म एवं निर्वाण एक ही पवित्र तिथि को हुआ था। जन्म पूस अमावस्या 1881 एवं अवसान पूस अमावस्या सन् 1940 उन्होने सिद्ध किया है। दरअसल पंडितजी ने अपने एक ही जीवन में कई जन्मों के पुण्य-कार्य संपन्न कर डाले थे। गाँधी जी ने उन्हें रायपुर क्षेत्र के लिए अपना सेनानी नियुक्त किया था। पंडित जी ने भी महात्मा गाँधी के किसान-आंदोलन और अछूतोद्धार कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए अपना सब कुछ समर्पित कर दिया था। वे कई गाँवों के अँग्रेज ज़मींदार थे। अँग्रेज़ प्रशासन के विरुद्ध उनके कार्यों से शासन उनके विरुद्ध हो गया। उन्हें प्रताड़ित करने के लिए उनकी मालगुज़ारी के कार्यों में भी हस्तक्षेप होने लगा। अछूतोद्धार और दलितों के साथ के कारण उनके समाज और संबंधियों ने उनका साथ छोड़ दिया। लगातार परिश्रम के कारण उनके स्वास्थ्य के ऊपर भी बुरा प्रभाव पड़ने लगा। छत्तीसगढ़ के उत्थान के लिए उन्होंने बहुमुखी प्रयास किए थे। छत्तीसगढ़ी बोली को प्रोन्नत कर के भाषा के रूप में स्थापित करने का प्रयास चल ही रहा था। वे अपनी ऊर्जा का बहुकोणीय उपयोग करते चले जा रहे थे। परंतु कार्य के साथ जो विश्राम और शांति आवश्यक हुआ करती है, उसकी ओर उनको ध्यान देने का समय ही नहीं था। अपनी धन-संपदा को बचाने का प्रयास भी उन्होने नहीं किया। फलस्वरूप उन्हें धन-संपत्ति-स्वास्थ्य सबसे हाथ धोना पड़ा।

हिंदी साहित्य के आधुनिक उत्थान काल में भारतेंदु बाबू हरिशचंद्र के समान ही उन्होंने भी राष्ट्र, समाज और साहित्य के लिए सब कुछ होम कर दिया, परंतु जो गौरव 'भारतेन्दु जी' को दिया गया, उससे पं. सुंदरलाल शर्मा वंचित रहे। इसे छत्तीसगढ़ का दुर्भाग्य ही कहें कि ऐसा धुरंधर महान व्यक्तित्व भारतीय इतिहास में अनचीन्हा ही रह गया।

❖

राष्ट्रीय जागरण के प्रकाश-पुंज पं. सुंदरलाल शर्मा

■ केयूर भूषण

छत्तीसगढ़ अंचल को सुसंस्कृत बनाने में तीन महापुरुषों का सर्वाधिक योगदान है। प्रथम गुरु घासीदास जी ने आध्यात्मिक चेतना जाग्रत की। सत्य, प्रेम, करुणा जो छत्तीसगढ़ के जन-जन में समाहित है, यह उन्हीं की देन है। अँग्रेजों की पराधीनता से मुक्ति के साथ भूख से मुक्ति का संघर्ष वीरनारायण सिंह ने प्रारंभ किया, जिसमें वे बलिदान हुए। तीसरा युग पं. सुंदरलाल शर्मा का आता है, जिन्होंने सुपुप्त छत्तीसगढ़ में राष्ट्रीय चेतना जगाई, जिसके लिए उन्होंने जागरण की सभी विधाओं का प्रयोग करते हुए अपना सब कुछ अर्पण कर दिया। हम कुछ नहीं कह सकते कि देश के किस नेता से उनकी तुलना करें।

इस अंचल की कला और संस्कृति के जागरण में वे रवीन्द्रनाथ टैगोर के समकक्ष बैठते हैं, तो स्वतंत्रता-संग्राम के योद्धा के रूप में लोकमान्य तिलक, सत्याग्रहियों के रूप में महात्मा गाँधी के समकक्ष बैठते हैं तो समाज-सुधार के कार्यों में ज्योतिबा फुले, वैज्ञानिक रूप में कृषि-वैज्ञानिक थे। ऐसा बहुआयामी व्यक्ति भारत में कोई और हुआ, वैसा मुझे अब तक सुनने में नहीं आया है। इस शताब्दी के अंदर जितने कार्य पं. सुंदरलाल शर्मा ने किए हैं और जिसका प्रभाव इस अंचल के जनमानस में पड़ा है, उतना किसी के कार्य का नहीं। उनके किए कार्यों को अगर हम एक किनारे रख दें, तो हमें छत्तीसगढ़ अंचल में शून्यता दिखाई देगी। दुर्भाग्य हमारा था कि हम लोग राजनैतिक महत्वाकांक्षा एवं स्वार्थ के पीछे उन्हें विस्मृत कर बैठे थे। पर क्रांति की चिनगारी कभी बुझती नहीं, भले राख की ढेरी में दबी रह जाए। हवा के बहाव में जब राख उड़ जाती है, तब वह दबी चिनगारी ज्योति बनकर जागृत होती है, जिसके आलोक में सारा अंचल आलोकित हो उठता है। वहीं पं. सुंदरलाल शर्मा की राख की ढेरी से निकली चिंगारी छत्तीसगढ़ राज्य के रूप में प्रगट हुई है। यह पूरे अंचल के खरपतवारों को दूर कर देगी। उनका खुशहाल और समृद्ध छत्तीसगढ़ का सपना पूरा होगा।

पं. सुंदरलाल शर्मा जी का जन्म छत्तीसगढ़ के प्रयाग त्रिवेदी संगम राजिम में हुआ, जहाँ भगवान राजीव लोचन विराजमान हैं। उनके पाँव पखारने तीनों नदियाँ महानदी, पैरी और सोंदुल एक साथ जल अर्पित कर रही हैं। कैसा अनुपम दृश्य है कि

यह मानो कला, साहित्य, और भक्ति एक साथ अपने को समर्पित कर रही है। आँखों के सामने मीरा उतर आती हैं, जिनकी आँखों से प्रेमाश्रु बह रहा है, कंठ से गीत और पावों में थिरकन। मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई। एक बार जाकर राजीवलोचन का दर्शन तो कर आइए, भक्त मंडली में वही समर्पण पाएँगे।

राजिम पं. सुंदरलाल शर्मा जी की जन्मस्थली, हैहयवंशी के काल में बना मंदिर और उसके साथ ही बसा शहर कई राजाओं के इतिहास को अंकित करते, मराठा काल में भी अपने गौरव को अक्षुण्ण रखते, राघोबा महाड़िक के काल में पं. सुंदरलाल शर्मा के पिता पं. जियालालजी तिवारी उनके दरबार के प्रमुख सामंत थे। मुहाणिक जी बहुत उदार और कलाप्रेमी थे। स्वयं भक्त तो थे ही। भगवान राजीवलोचन की पूजा-अर्चना उसी परंपरा से होती है, जो परंपरा जगन्नाथपुरी में जगन्नाथ भगवान की होती है। उनके तीनों रूपों की आरती, उनकी तीनों समय के भोग, कथा भागवत, उसके अनुसार शृंगार, कोठारी, माली, पंडा, पुजेरी की बस्ती है। पं. जियालाल जी की स्थिति एक सामंत की थी। उस समय के मुताबिक एक अच्छे क़ानूनविद् भी थे। काँकेर राजदरबार में उनकी मान्यता थी। वहाँ के सलाहकार भी थे। वहाँ भी उनकी 22 गाँवों की जागीर थी। राजिम के आसपास तीन बड़े गाँव थे। एक तरह के वे स्वयं भी जागीरदार थे। उनके एकमात्र पुत्र थे पं. सुंदरलाल शर्मा जी। पिता भी कवि एवं संगीतज्ञ थे। पखावज बजाया करते थे। बाहर से आने वाले अतिथि कलाकारों के साथ संगत भी किया करते थे।

उनका परिवार भी बहुत ही संपन्न और कलाप्रेमी था। वही पं. सुंदरलाल शर्मा जी को विरासत में मिला। सत्याग्रह की वृत्ति कैसे जागी, वह प्रभाव उनमें कैसे आया, खोज का विषय है। संभव है अक्खड़ साधुओं से वह वृत्ति मिली हो। क्योंकि कबीर पंथ एवं सतनामी पंथ का इस क्षेत्र में व्यापक पभाव था। वे मांसाहार के खिलाफ़ उपदेश दिया करते थे। छत्तीसगढ़ का अधिकांश परिवार देवी उपासक होता था। देवी प्रसाद के रूप में उसे गहण किया करते थे। उनमें बाह्मण भी होते थे। अपने दस वर्ष की उम्र में ही घर में मांसाहार बंद करने के लिए सत्यागह कर बैठे। खाना-पीना छोड़कर रूठ गए। खूब मान-मनौव्वल हुई, बहिन समझाई, पिता जी ने समझाया। माँ ने प्यार भरी वाणी से दुलारकर समझाया, पर हठी बालक सुंदरलाल मांस छुड़ाकर ही रहे। उसी दिन से पं. सुंदरलाल शर्मा के परिवार में मांस खाना बंद हुआ। वे आशु कवि थे। प्रायमरी में ही कविता करने लगे थे। अद्भुत प्रतिभा थी। आड़ी-खड़ी चौखड़ बनाकर बच्चों से कहते - तुम किसी भी खंड में उंगली रखो, मैं शब्द लिखता हूँ। सभी खंड के पूरा होते

ही एक कविता बन जाती थी। उसी कविता ने आगे चलकर सोलह किताबों की रचना की। छत्तीसगढ़ी और हिन्दी दोनों में समान रूप से लिखते थे। उनकी छत्तीसगढ़ी दानलीला ने तो हलचल मचा दी थी। वे एक भक्त कवि थे। नाटक भी लिखे, उन्हें खेला भी। स्वयं कलाकार के रूप में भाग भी लेते थे। मूर्तिकला एवं चित्रकला में भी उनकी महारत थी।

कृष्ण-लीला में कृष्ण-जन्म समय का दृश्य दिखाते समय, पीछे के परदे में जमुना का ज़िक्र दिखाते समय, वहाँ की हरियाली, गोचरण आदि से गोकुल का दृश्य दिखाई देता। उसमें वसुदेव जब जमुना पार करते समय टोकरी में बालक को लिए निकलते, उस समय टोकरी का मिट्टी का बना कृष्ण किसी जीवित बालक से कम नहीं दिखाई देता। जब वे 1922 में रायपुर जेल के बंदी हुए, वहाँ अपने साथ भगवती प्रसाद मिश्र को दंडस्वरूप गुनारखाना ले जाने लगे, तब उनका जल्लादों के साथ पकड़े हुए चित्र को, अपने जेल की पत्रिका जिसे उन्होंने कृष्ण जन्म नाम दिया था, उसके, प्रथम पृष्ठ पर दिया, जो केवल पेंसिल से बनाया हुआ चित्र है। उस पत्रिका में जेल का पूरा वर्णन है। राष्ट्रीय आंदोलन का वह दस्तावेज़ है। वे इस अंचल के प्रथम सत्याग्रही थे।

उन्होंने गाँधी जी के अस्पृश्यता-निवारण-आँदोलन को छत्तीसगढ़ में उनसे पूर्व प्रारंभ कर दिया था, जिसके कारण गाँधीजी ने उन्हें अपना बड़ा भाई माना था। सामाजिक समता के आंदोलन के साथ ही साथ किसानों के शोषण के खिलाफ़ उन्होंने संघर्ष किया, जो कंडेल सत्याग्रह के नाम से प्रसिद्ध है, जिसके कारण गाँधी जी प्रथम बार छत्तीसगढ़ आए और जंगल-सत्यागह का नेतृत्व किया। स्वतंत्रता-संग्राम के अग्रणी योद्धा तो थे ही, अंचल के वैज्ञानिक विकास में भी अगुवा थे। कृषि में रोपा खेती का प्रारंभ उन्होंने ही करवाया महानदी से उद्वहन कर जल अपने बाग में लाते। विभिन्न प्रकार के फल उनके भाग में होते। प्रथम राइस मिल की स्थापना उन्होंने करवाई। उनके त्याग की पराकाष्ठा तो इसी में पगट होती है कि उनके गाँव की खेती और ज़मींदारी राष्ट्रीय आज़ादी के आंदोलन में समाप्त हो गई।

वे अपने अंतिम समय में भी सुसंस्कृत और सम्पन्न छत्तीसगढ़ देखना चाहते थे, इसलिए उन्होंने दुलरूवा नामक हस्तलिखित पत्रिका का प्रकाशन किया। वह भी छत्तीसगढ़ की स्थिति का दस्तावेज था। इस छोटे-से लेख में उनके कार्यों का वर्णन कर सकूँ, यह असंभव है। मैं इतनना ही कह सकता हूँ कि जिन्होंने छत्तीसगढ़ की संस्कृति की पहचान बताई, जिसके आधार पर आज छत्तीसगढ़ प्रांत का निर्माण हुआ, उसके प्रेरणास्रोत कोई और नहीं, पं. सुंदरलाल शर्मा ही थे। ❖

छत्तीसगढ़ में राष्ट्रीय आंदोलन के प्रणेता पं. सुंदरलाल शर्मा

■ ललित मिश्रा

पं. सुंदरलाल शर्मा छत्तीसगढ़ में जागरण के प्रणेता थे। इनका जन्म संवत् 1938 की पौष अमावस्या को छत्तीसगढ़ के ऐतिहासिक नगर राजिम में हुआ था। राष्ट्रीय स्वतंत्रता-आंदोलन में बचपन से ही भाग लेते रहे। सन् 1905 के बंग-भंग आंदोलन का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा एवं देशवासियों के हित के लिए कार्य करने की इच्छा और अधिक प्रबलतर होती गई। बाद में आर्य-समाज के स्वामी श्रद्धानंद के कार्य से प्रभावित होकर आपने हरिजनोद्धार एवं अस्पृश्यता-निवारण की ओर अपना कार्यक्षेत्र उन्मुख किया।

वे मानव के प्रति मानव के भेद को कृत्रिम एवं धर्म-विरुद्ध मानते थे। इसीलिए उन्होंने उस समय की अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों को ऊपर उठाने तथा उन्हें समान स्तर पर लाने का प्रयत्न प्रारंभ किया। इस कार्य के लिए उन्होंने गुरु घासीदास के आदर्शों को दलित-कल्याण हेतु अपना आधार बनाया। उन्होंने श्री गुरु घासीदास के सिद्धांतों के द्वारा पुनर्जागरण का बीड़ा उठाया।

पंडित जी पाराशर गोत्र के यजुर्वेदी ब्राह्मण होते हुए भी संपूर्ण रूप से दलित वर्ग में समाविष्ट रहे। गुरु घासीदास के बताये नैतिक निष्ठा के नियमों के पालन का उपदेश देने एवं समाज के सभी दलित वर्गों में स्वाभिमान जगाने के लिए उन्होंने "सतनामी पुराण" नामक ग्रंथ की रचना की।

वर्ण-व्यवस्था में उन्होंने हिंदू धर्म के अंतर्गत सतनामी समाज को द्विजोचित यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार बताया। इसके लिए वे सन् 1917 में राजमहंत श्री अंजोरदास तथा गजाधरसाव मुंगेली वा‍

एक सभा आयोजित करने में सफल हुए। उस सभा में छत्तीसगढ़ की सभी जातियों के मुखिया लोग उपस्थित थे। किसी कारणवश उस समय के धर्म-धुरीणों के विरोध से यह कार्य आगे चलकर (सन् 1924) कानपुर काँग्रेस में संपन्न हुआ। कानपुर काँग्रेस में जाकर जनेऊसंस्कार पूर्ण कराने में पं. सुंदरलाल शर्मा सफल रहे। कानपुर काँग्रेस में सतनामी समाज के प्रमुख नेता गुरु अगमदास, गुरु गोसाई, राजमहंत नैनदास, राजमहंत अंजोरदास, राजमहंत विशालदास, रतिराम मालगुजार आदि थे। इन लोगों का संस्कार स्वयं स्वामी श्रद्धानंदजी ने किया था। महात्मागाँधी, पं. मदनमोहन मालवीय, डॉ.

मुञ्जे तथा लाला लाजपतराय भी उक्त अवसर पर मौजूद थे, जिन्होंने शर्मा जी के प्रयासों की सराहना की।

सवर्ण समाज के समान अधिकार प्राप्त करने के लिए उन्होंने सन् 1925 में मंदिर-प्रवेश का आंदोलन प्रारंभ किया। इसी समय भोई जाति के राजीव लोचन मंदिर में प्रवेश करने हेतु आंदोलन हुआ। उसी समय से रामचंद्र मंदिर में सभी वर्णों को प्रवेश करने का हक प्राप्त हुआ। ब्राह्मण जो उनके प्रभाव में थे, वे सत्यनारायण कथा-पाठ, विवाह, जन्म-मृत्यु आदि अवसरों पर पुरोहिती करने लगे। उन्होंने नाई, धोबी आदि (पौनी के अधिकार) की समान सेवाओं के लिए आंदोलन किया, जिसके कारण उन्हें ब्राह्मण-समाज से बहिष्कृत करने का प्रयत्न किया। सतनामी-समाज में शैक्षणिक जागृति लाने के लिए सन् 1927 में रायपुर में सतनामी आश्रम की स्थापना की गई। इसीलिए महात्मा गाँधी जब सन् 1933 में दूसरी बार छत्तीसगढ़ की यात्रा पर आये, तब राजिम-नवापारा की सभा को संबोधित करते हुए कहा था कि पं. सुंदरलाल शर्मा उम्र में तो मुझसे छोटे हैं, परंतु हरिजनोद्धार के कार्य में मुझसे बड़े हैं।

पं. सुंदरलाल शर्मा छत्तीसगढ़ में राष्ट्रीय आंदोलन के प्रणेता थे। इस आंदोलन में सतनामी-समाज पं. सुंदरलाल शर्मा के अगले दस्ते के रूम में रहा है। उनके साथ जेल जाने वालों और लाठी खाने वालों में सर्वश्री प्राण, विश्वादास और उनके अन्य साथी कौंदकेरा निवासी थे। इनके अतिरिक्त धमतरी तहसील के सैकड़ों सतनामी युवक जंगल-सत्याग्रह में शामिल थे। नवागाँव निवासी बरातू सतनामी, जो कि सन् 1930 के आंदोलन में भाग लेने वाले नवयुवक थे, वीर सत्याग्रही की हैसियत से रायपुर जेल में बंद थे। इन्हें पहले चार महीने के लिए कठिन कारावास की सज़ा दी गई। वे सत्याग्रही होने के नाते जेल के अंदर भी गलत नियमों का पालन करने से इंकार करते रहे, जिसके कारण उन्हें जेल के भीतर अँधेरी कोठरी में हथकड़ी और बेड़ी डालकर रखा गया था। अनेक तरह से यातनायें देकर उस युवक से माफीनामा भराने का प्रयत्न किया गया, किंतु सब व्यर्थ रहा। इस व्यवहार के कारण क्रोधित होकर अधिकारी वर्ग ने उस पर काम पूरा न करने का इल्ज़ाम लगाकर पुनः मुकदमा चलाया गया और चार महीने की अतिरिक्त सज़ा बढ़ा दी गई। उन्होंने उस सज़ा एवं यातना को भी सहर्ष स्वीकार कर लिया, किंतु ब्रिटिश सल्तनत के आततायी जेल अधिकारियों के सामने अपना सिर नहीं झुकाया।

इस तरह पं. सुंदरलाल शर्मा का संपूर्ण जीवन दलित वर्ग को आगे बढ़ाने तथा विशेषकर सतनामी-समाज को जागृत करने में ही व्यतीत हुआ।

❖

पंडित सुंदरलाल शर्मा
अउ ओकर करम छेत्र धमतरी

▪ डॉ. प्रभंजन शास्त्री

पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर के पं. सुंदरलाल शर्मा शोध पीठ डहर ले प्रभारी अध्यक्ष के दस्तखत करे पत्र आइस- पं. सुंदरलाल शर्मा खातिर लेख लिखे बर। साइत मोला "धमतरी तहसील (अभिन के जिला)अउ सुंदरलाल शर्मा" विसय देय गेय हे। ए तो अइसने होइस जइसे सर्वव्यापक ब्रहम बर 'मंदिर म भगवान' लेख लिखव। सिरिफ छत्तीसगढ़ नहीं, भलुक सबो देस म जेकर सुगंधि पहुँच गेहे, तेला धमतरी म धाँधो। एकर इही कारन हो सकथे के धमतरी छेत्र म सुंदरलाल शर्मा बिसय ह नान्हें होय ले शर्मा जी के बारे म जादा खोजपूर्ण बात के पता चलही।

अब मोर बिसेस खोज करे के गोड़ के दरद के कारन न सक्ति हे न उमर। बाहिर ल नइ खोजे सकंव भितरे ल खोजे परही। झक सवार होइस अउ लेख लिखागे। मोला लागथे शर्मा जी ला घला झक सवार होइस होही तभे बड़े जान-माल गुजारी, तेकर सुख सुविधा अउ संपत्ति ल छोंड़के बुटोके जनता तथा देससेवा म कूदगे। पं. सुंदरलाल शर्मा ल जैसे छत्तीसगढ़ के गाँधी कथें, ओइसने कवि के रूप म ओला छत्तीसगढ़ के बाल्मिकी कहना असंगत नइ होही। तब ओकर बारे म छत्तीसगढ़ी म लेख होना चाही। महूँ छत्तीसगढ़ी म लेख लिख डरेंव।

शर्मा जी ह हिरदे से कवि रहिस। गीता म भगवान कृष्ण ह कवि के अर्थ बताए हे- सर्वग्य, त्रिकालग्य। तभे कहे जाथे- जिहां न पहुंचे रवि, तिहां पहुंचे कवि। कवि कोमल हिरदे के होथे अउ कोंवर हिरदे ह जनहितकारी, दयालू होबे करथे। बाल्मिकी के क्रौंच पंछी ऊपर दया कस भाव पं. शर्मा म बचपने म जागगे रहिस क्रांतिकारी रूप म। बाल्मिकी मुनि ह जैसे परदुखकातरता जन्य क्रोध म क्रौंच ल मरवइया सिकारी ल सराप दिस। शर्मा जी ह अपने घर म बलि प्रथा मांस-मछरी खाय के विरोध म खाये-पिये ल छोंड़ दिस, जौन काम ह अनसन कहाथे। शर्मा जी के अनसन ह तभे टूटिस, जब घर के सियान मन ओकर बात मानिन भर नहीं, भलुक संकल्प लीन।

चित्रोत्पला छत्तीसगढ़ के गंगा महानदी के तट म छत्तीसगढ़ी के वाल्मीकि ह अंवतरिस। हां भइ, जे अपन समे के आम जनता भर नहीं, भलुक खास लोगन मन ले

अलग हटके ओ काम कर देखाये, जेला ओ समे के सबो मिलके नइ करे सकतिन। ओ मनखे के जनम नहीं, अंवतार होथे। सिरतोन म भगवान ह अपन अंस ल पुरोके तेला खास काम करेबर भेजथे।

कमल क्षेत्र राजिम जिहां भगवान राजीव लोचन ह एक भक्तिन राजिम के बिनती करे ले ओला अपन आँखी म बैठार लिस, अपन नाव ल राजीव लोचन के अवेज म राजिम लोचन धरलिस, उही प्रकृति के सुंदरता के झंझोत म बिराजे कमलक्षेत्र राजिम म सुंदरलाल के अंवतार होइस। एहा रूप म तो सुंदर रहिबे करिस, फेर एकर कर्म ह एला अउ सुंदर बनादिस। एहा आगू चलके जम्मो छत्तीसगढ़ के लाल होगे-सुंदरलाल। राजिम लोचन भगवान के असर 'दानलीला' के कृष्ण भक्त कवि पं. शर्मा ऊपर पड़िस। पं. जिया लाल के सपूत ह अपन करम के गंगा महानदी के जल ह मुरझावत छत्तीसगढ़ ल पलोके पियाके जिया दिस।

पं. शर्मा ह अपन कर्म के सुंदरता ल अपन मालगुजारी, खेती-खार, घर-बार अउ ते अउ लैकापन ले जुरे अपन साहित्य सर्जना ल घला त्याग के, अरपन करके बढ़ाइस। महात्मा गाँधी सही इहू ह अपन बाल-बच्चा खातिर कुछू नइ सोंचके जम्मो छत्तीसगढ़ के सामाजिक, आर्थिक अउ राजनीतिक उन्नति अउ देस के आजादी खातिर अपन सब कुछ लगादिस। जैसे महात्मा गाँधी ह अपन कर्म, सेवा अउ त्याग से 'राष्ट्रपिता' कहाइस, अइसने ए छत्तीसगढ़ के लाल ल 'छत्तीसगढ़ पिता' कहे जाय, तो सिरतोन बात ह डींग मारना नइ कहाही। आर्थिक बिपत के समय म मितान मन के सहायता ल एकर छत्तीसगढ़िया आत्मा ह कहां स्वीकारिस।

सबसे पहिली पं. शर्मा ह वाल्मीकि सही लोगन ले दुरये-छुरये ले निरास हतास मनखे मन ल अउ क्रौंच पंछी कस छटपटात अपन मातृभासा छत्तीसगढ़ी ल देखिस, तब ओकर परदुखकातरता जन्य क्रोध ह भड़क उठिस, जेकर कारन अछूतोद्धार आंदोलन अउ 'दानलीला' पोथी के रचना होइस। एमा शर्मा जी ह अपन जात अउ कइ ठन भासा के ग्यान ल बलि चढ़ादिस। सुंदरलाल के हिरदे ले निकले सुंदर बात होवय के दूसर जगा के हमर पिछड़े के मुख्य कारन हे छूवाछूत के बीमारी अउ हमर मातृभासा छत्तीसगढ़ी म साहित्य के अभाव। जनेऊ धारन करवाना, मंदिर प्रवेस दिलवाना अउ पुस्तकालय खोलना आदि ओकर कर्म फल होथे।

शर्मा जी गाँव म पैदा होइस अउ गाँव के हालत ल सुधारे बर जिंदगी भर उदिम करिस। गाँव के सुख-दुख ल जाने-चीन्हें ते पायके ओकर बात लोगन ल बताये

बर अगुवाई करे प्रतिनिधि बने, पछतारी तीरे, एकर सेती कइ घाँव वो अपने संगवारी मितान मन के ढकेले ले दौंड़ म पिछुवागे। आजो गाँव ले वोट लेवइया मन गाँव ल उठाय बर का शर्मा जी सही तन-मन-धन ले उदिम करत हें ? जब तक गाँव के प्रतिनिधि मन गांव के अगुवाई ल छोंड़के सहरिया प्रतिनिधि मन के पिछलगुवा बने रहीं या कुर्सी पद के लोभ म गाँव डहर ले आँखी मूंदे रहिहीं, तब तक गाँव के कल्यान नइ होवय।

समदृष्टि वाला शर्मा जी ह सबोझन ल उठाय के उदिम करिस। कुर्मी छात्रावास, सतनामी समाज तथा अउ कई संगठन संगे-संग संस्कृत पाठशाला अउ ब्रह्मचर्याश्रम आदि के स्थापना करिस, तभो ले ब्राह्मण मन के कोप ले नइ बाँचिस। जांत ले अलग कर दिये गिस। एक बेर तो पंगत के पाँत ले घला उठा दिये गये रहिस।

ऐसे पं. सुंदरलाल शर्मा के जनम-भूमि अउ करम-भूमि पूरा छत्तीसगढ़ आय, फेर राजनीतिक कर्म के श्रीगनेस धमतरी छेत्र के कन्डेल नहर के आंदोलन से होइस। कंडेल के किसान मन खेत म नहर के पानी नइ लीन, तभो ले अँगरेज सरकार भरे बरसात म पानी चोरी के इल्ज़ाम लगाके पानी टैक्स वसूले के आर्डर दे दिस। सिरिफ आर्डर दिस, अतके नहीं, भलुक करमचारी मन वसूले बर कड़ाई करिन अउ कुर्की डिग्री के वारंट निकाल दिन। हतास-निरास हजारों किसान एकर विरोध करिन, फेर उँकर कान म जुवाँ नइ रेंगिस। ए बात ल जानके छोटे लाल श्रीवास्तव अउ नारायण राव मेघा वाले के सहयोग से सुंदरलाल शर्मा जी ह किसान मन के पच्छ म जबरदस्त आंदोलन सरकार के विरोध म चलाइस। नाँगर जोतत तता अहा बोलइया सिधवा किसान मन शर्मा जी के अगुवाई में अइसे आंदोलन करिन के अँगरेज सरकार अचरज म परगे। जब आंदोलन के समय ह जादा अउ रूप ह बड़े होवत गिस, तब एकर लगाम ल समर्थ हांथ म सौंपे बर, गाँधी जी ल बताए खातिर कलेचुप गिस किंतु जइसे ए बात के जानकारी अँगरेज सरकार ल होइस, तब तो तेहा तुरते कुर्की डिग्री ल रोक के अपन आर्डर ल वापस ले लिस।

अइसे कंडेल नहर आंदोलन ह पं. शर्मा ल छत्तीसगढ़ के राजनीतिक अगुवा नेता के रूप म छत्तीसगढ़ भर में नहीं, भलुक जम्मो देस म पहचान कराइस। पं. शर्मा के बलाए ले गाँधी जी ह छत्तीसगढ़ धमतरी के कंडेल नहर के आंदोलन खातिर आइस जरूर फेर आंदोलन म सामिल नइ हो पाइस, कारन के ए जबरदस्त आंदोलन के अगुवाई गाँधी जी करे, एकर पहिली अंगरेज सरकार ह हथियार डाल दिस। टेड़गा पुछी ह सोझ होके टांग तरी खुसरगे। फेर गाँधी जी ह ए आंदोलन के जीत के खुशी के मौका म जरूर

सामिल होगे। ओहा कंडेल नहर आंदोलन ल दूसर बारडोली आंदोलन नाव धरिस। शर्मा जी के अछूतोद्धार आंदोलन के जानकारी जब गाँधी जी ल होइस, तब ओहा ए महत्वपूर्ण बहुत जरूरी आंदोलन ल अपन ल कतको आगू सुरू करे के कारण शर्मा जी ल अपन गुरु घला कहिस। एमेर भगवान राम अउ महादेव जी के नता कस देखब म आथे। अछूतोद्धार आंदोलन ल लेके गाँधी जी ह शर्मा जी ल गुरु कहिस, तो सत्याग्रह अउ अहिंसा पूर्ण आंदोलन खातिर शर्मा जी ह गाँधी जी ल गुरु माने। कहे जाथे के शर्मा जी के आदर्स गाँधी जी रहिस तो लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ह ओकर ताकत रहिस।

तब शर्मा जी के ए सफलता म पूरा छत्तीसगढ़ के छाती फूलगे। गरब म माथा उँच होगे। फेर ए विजय गौरव ह 'यतो धर्मस्ततो जयः' के जइसे धमतरी क्षेत्र के कुरुक्षेत्र म मिलिस। कृष्ण-भक्त ए कवि-हृदय सुंदरलाल शर्मा ह अपन संगवारी अउ किसान भाई मन के सहयोग से ए आंदोलन के गोर्वधन पहाड़ ल उठा लेय रहिस। द्वापर म इंद्र ह विरोध म सिर ऊँचाय ग्वाल मन ल प्रलय काल के बरसा सही पानी बरसा के श्रीकृष्ण के रहत कहाँ धिरोय सकिस। ओइसने इहाँ, अँगरेज सरकार पानी-चोरी के इल्जाम म जुर्माना वसूल करे बर कुर्की डिगरी के अपन आर्डर ल वापस ले लिस। ओ तो उही समे अपन हार ल पक्का समझ गेय रहिस, जब कुरकी के नीलामी म कोनो बोली नइ लगाइन।

अइसने सिहावा जंगल म आदिवासी मन ऊपर अँगरेज नौकरसाही अउ पुलिस के अतलंग सताय के कारन एकर विरोध म जंगल सत्याग्रह आंदोलन होइस, तेकर अगुवाई घला पं.सुंदरलाल शर्मा ह करिस। आदिवासी मन जनम ले सोसित, पीड़ित होय ले उनकर मन म डर समागे रहिस। जौन पुलिस ल देखके या ओकर भाखा सुनके घर छोड़के जंगल-पहाड़ म लुका जाय, तिनला जोरके उँकर भितरी के मनखेपन ल, साहस अउ धैर्य ल भरके जोसियाइस- तुमन कोन अव, काय रहेव, अब का होगेव? जागो, उठो ए अमृत के बेटों वाला संदेस म जगाइस, जोरिस अउ आंदोलन करे के मंत्र फूँकिस। राख म दबे झोइला ह ए जागरन मंत्र के फूँक ले सिरिफ सुलगिस नहीं, भलुक धगधग ले बरे ल धर लिस। शर्मा जी ह उनला उँकर असली चेहरा अउ आत्मा ल चिन्हवाइस। अँगरेज के नाव सुनके कँपैया मन के आत्मा ल झकझोर के कहिस- ''क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ, नैतत्व यि उपपद्यते। क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्लोतिष्ठ परंतय''- ऐसे इन धनुर्धारी अर्जुन मन ला जगाइस अउ युद्धयस्व कहके आंदोलन करवाइस। सिरतोन म अँगरेज के डर रूपी मोह म परे ये मन हथियार डालना का अपन

जिंदगी ल जिंदगी ले अलग करके जीयत रहिन, तेमन शर्मा जी के अगुवाई म न सिरिफ लोहा बजइन भलुक जीतिन घला।

ए जीत के इनाम म अँगरेज सरकार ह शर्मा जी ल डेढ़ साल के सजा सुनादिस। शर्मा ज ह जेलखाना के नाव राखिस "कृष्ण जन्म स्थान" अउ कृष्ण जन्म स्थान से जेल ले एक हाथ म लिखे समाचार-पत्र निकालिस, जेमा जेल म सजा भोगत कैदी मन उपर कैसे ढोर-डांगर कस व्यवहार अउ अत्याचार करे जाथे, तेकर सब्द म अउ चित्रकारी म चित्र खीचे जाय। शर्मा जी ल छत्तीसगढ़ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम सेनानी बनाय के मौका अउ आंदोलन के भुयां धमतरी ह दिस। इहां पं. शर्मा ह धमतरी क्षेत्र ल गरब करे के मौका दिस, तो धमतरी ले घला पं. शर्मा ह गरब ल पोटारिस, ओसने जैसे महाराना प्रताप ह हल्दी घाटी युद्ध ले गौरव ल भेंटिस, त हल्दी घाटी ह घला आजो महाराना के सुरता देवावत गरब म मूड़ ल उँचाय हावे। अइसने आंदोलन सत्याग्रह के प्रथम श्री गनेस, गाँधी जी ल नेवता देके पहिली बेर छत्तीसगढ़ म बने के कारन धमतरी बने हे जेकर ओला आजो गर्व हे। अउ ते अउ, जब पं. शर्मा ह स्वदेशी चीज के दुकान म घाटा परे ले कर्जा म लदागे रहिस, तब काँकेर के अपन गाँव ल बेचके कर्जा मुक्त होइस, यानी इहू बखत धमतरी क्षेत्र ओकर काम आइस। काँकेर म शर्मा जी के बचपन ह खेलिस कूदिस अउ अपन दुर्गा प्रसाद तिवारी गुरु जी ले हिंदी, अँग्रेजी, संस्कृत, उर्दू अउ मराठी के ग्यान प्राप्त करिस। कविता के बीजा घला ह काँकेर में बोंवागे रहिस। ए सबले ऐसे लागथे के शर्मा जी के ग्यान के नेंव ह काँकेर धमतरी म भरे गेय रहिस, साइत तिही पाइके अपन कर्म के गंगा ल अपन ग्यान के गंगोत्री धमतरी छेत्र ले बोहवाइस। जिंदगी भर अपन माई घर सही मानिस। धमतरी म राष्ट्रीय विद्यालय, अनाथालय, स्वदेशी दुकान अउ लोगन ल सासन विरोधी नीति ल बताये बर धमतरी म जिला भर के राजनीतिक परिसद के स्थापना ए सबो बात ह शर्मा जी अउ धमतरी के आपसी लगाव ल उजागर करथे। अँगरेज मन के फूट डारो अउ राज करो के नीति के उमरौनी म आके भोजली सरोय के समे जब हिंदू-मुसलमान म दंगा होय के नौबत आ गेय रहिस, तब शर्मा जी ह दुनो पच्छ ल समझा-बुझाके होवइया झगरा ल मितानी म बदलिस। हिंदू-मुसलिम सांप्रदायिक एकता के शर्मा जी के करनी के जगा घला धमतरी बनिस।

आजो जम्मो छत्तीसगढ़ ह जब शर्मा जी ल अमन मयारू मानके मया, मान-सम्मान देय बर जुरियाथे, तब धमतरी ह शर्मा जी ऊपर अपन कुछ जादा जेठासी संही हक जमावत-बतावत आगू माला पहिराय बर आगू बढ़ जाथे।

❖

पं. सुंदरलाल शर्मा और धमतरी

■ त्रिभुवन पांडेय

उत्तर-पूर्व की ओर से यदि धमतरी ज़िले में प्रवेश करें, तो नयापारा (राजिम)-मगरलोड मार्ग पर महानदी पार करते ही पाँचवें कि.मी. पर एक गाँव मिलेगा चमसुर। चमसुर से मगरलोड की दूरी 15 कि.मी. है। इसी चमसुर ग्राम में स्वतंत्रता की लड़ाई के एक नायक तपस्वी पं. सुंदरलाल शर्मा का जन्म सन् 1881 में हुआ। मगरलोड से आगे बढ़ें, तो कुरूद मार्ग पर मेघा ग्राम स्थित है। दूरी 8 कि.मी.। नारायणराव मेघावाले का जन्म इसी गाँव में हुआ। स्वतंत्रता-आंदोलन में वे पं. सुंदरलाल शर्मा के अभिन्न सहयोगी बने। कुरूद-धमतरी मार्ग पर छाती से 2 कि.मी. की दूरी पर एक कच्चा-पक्का मार्ग कंडेल की ओर जाता है। राष्ट्रीय राजमार्ग 43 से इसकी दूरी है 10 कि.मी.। यह बाबू छोटे लाल श्रीवास्तव का ग्राम था। धमतरी मराठापारा में नत्थू जी जगताप निवास करते थे, जहाँ स्वतंत्रता-आंदोलन की तैयारी होती थी, कार्यकर्ता तैयार किये जाते थे, और काँग्रेस अधिवेशन से लेकर नवागाँव जंगल-सत्याग्रह के लिए आंदोलनकारियों के जत्थे भेजे जाते थे। नगरी-सिहावा के श्यामलाल सोम अँग्रेज़ों के विरुद्ध जंगल-सत्याग्रह के प्रमुख स्वतंत्रता-सेनानी रहे। पं. सुंदरलाल शर्मा, नारायणराव मेघावाले, बाबू छोटेलाल श्रीवास्तव, और नत्थू जी जगताप के नेतृत्व में धमतरी ज़िला (तब तहसील) संघर्ष के ऐसे रास्ते में चल पड़ा, जहाँ जेल की सज़ाएँ थीं। पुलिस की लाठियाँ थीं, और बंदूक की गोलियाँ थीं। यह जीवन को हथेली पर लेकर चलनेवाला रास्ता था और हारकर वापस लौटने की बात सोचना भी इस रास्ते पर चलने वाले व्यक्ति के लिए स्वप्न में भी संभव नहीं था।

धमतरी में पं.सुंदरलाल शर्मा का आगमन सन् 1918 में हुआ। नारायण राव मेघावाले के साथ सन् 1906 में काँग्रेस के सूरत-अधिवेशन में भाग ले चुके थे। स्वदेशी आंदोलन के दौरान दोनों ही स्वदेशी वस्तु के विक्रय में घाटा उठा चुके थे। सन् 1918 में ही कर्ज़ पटाने के लिए उन्हें अपना गाँव बेचना पड़ा था। इसी वर्ष वे हरिजनों को मंदिर-प्रवेश कराने में सफल हुए थे। सन् 1918 में पं. सुंदरलाल शर्मा ने धमतरी तहसील में राजनैतिक परिषद् का आयोजन किया। नारायण राव मेघावाले और बाबू छोटेलाल श्रीवास्तव इस आयोजन में उनके सहयोगी थे। वामनराव लाखे परिषद् के अध्यक्ष मनोनीत किये गये। परिषद् में माधवराव सप्रे, घनश्याम सिंह गुप्त, डॉ. मुंजे

आदि नेता उपस्थित थे। परिषद् में नहर-पानी, चरागान, जलाऊ लकड़ी और बेगार-प्रथा पर गंभीरता से विचार किया गया। बेगार-प्रथा की समाप्ति के लिए सर्वसम्मति से प्रस्ताव भी पारित किया गया।

मई, सन् 1919 में पं.सुंदरलाल शर्मा के नेतृत्व में द्वितीय तहसील राजनैतिक परिषद् का आयोजन किया गया। अध्यक्ष थे बाबू साहब खापर्डे। पं. रामदयाल तिवारी की उपस्थिति इस परिषद् की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। पं. सुंदरलाल शर्मा अपने सहयोगी नारायण राव मेघावाले, नत्थू जी जगताप, एवं बाबू छोटेलाल श्रीवास्तव के साथ महीने भर तक तैयारी में व्यस्त रहे। पं. सुंदरलाल शर्मा के इस प्रयास का बड़ा ही व्यापक प्रभाव तहसील के लोगों पर पड़ा। स्वतंत्रता-आंदोलन की चेतना जगाने में भी इन आयोजनों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। आगे चलकर 1920 में सुप्रसिद्ध कंडेल-नहर-सत्याग्रह बाबू छोटेलाल श्रीवास्तव के ग्राम कंडेल में प्रारंभ हुआ, जो गाँधी जी के कलकत्ता अधिवेशन में प्रस्तावित असहयोग-आंदोलन के पूर्व ही प्रारंभ हो गया और देश के प्रथम (असहयोग) सत्याग्रह-आंदोलन के सफल होने की ऐतिहासिक घटना के रूप में इतिहास में दर्ज हो गया।

कंडेल-नहर-सत्याग्रह यद्यपि बाबू छोटेलाल श्रीवास्तव के नेतृत्व में प्रारंभ हुआ, लेकिन पं. सुंदरलाल शर्मा और नारायण राव मेघावाले सहित नत्थू जी जगताप का सहयोग बराबर मिलता रहा। रुद्री बाँध से निकलने वाली नहर कंडेल के समीप से आगे जाती थी। सिंचाई अफ़सर चाहते थे कि नहर के समीप स्थित गाँव वाले दस वर्ष का अनुबंध कर लें, जिससे उन्हें सिंचाई कर मिल सके। कंडेल के आसपास वर्षा ठीक होने के कारण सिंचाई की कोई ज़रूरत नहीं थी। सिंचाई विभाग के काफ़ी ज़ोर डालने के बाद भी जब कंडेल ग्रामवासी अनुबंध के लिए तैयार नहीं हुए, तब अगस्त, 1920 के महीने में एक दिन नहर तोड़कर पानी कंडेल के खेतों की ओर बहा दिया गया। संयोगवश उसी दिन और जमकर वर्षा हुई, जबकि पहले भी ठीक वर्षा हो रही थी। नहर से पानी लेने के आरोप में विभाग ने ग्रामवासियों पर 4303 रुपये वसूल करने के लिए कुर्की वारंट जारी कर दिया, जिसके विरोध में सत्याग्रह का निश्चय किया गया। सत्याग्रह प्रारंभ करने के पूर्व सितम्बर, 1920 में कंडेल ग्राम में सभा का आयोजन किया गया, जिसमें पं.सुंदरलाल शर्मा, बाबू छोटेलाल श्रीवास्तव, नारायण राव मेघावाले ने उपस्थित ग्रामवासियों को अँग्रेज़ अफसरों की ज्यादती से अवगत कराया और सत्याग्रह का ऐलान कर दिया। ग्रामवासियों ने निश्चय किया कि वे ज़ुर्माने की रकम नहीं देंगे। बाध्य होकर अफसरों ने उनके पशुओं को नीलाम करना चाहा, मगर असफल रहे। धमतरी

इतवारी बाज़ार से लेकर, पोटियाडीह, आमदी कहीं भी पशुओं की नीलामी नहीं हो सकी। दिसम्बर, 1920 के प्रारंभ में पं.सुंदरलाल शर्मा शर्मा गाँधी जी को आमंत्रित करने कलकत्ता (कोलकाता) गये। गाँधीजी बंगाल के दौरे पर थे। कलकत्ता में पं.सुंदरलाल शर्मा की मुलाकात गाँधी जी से हुई। गाँधीजी उनके साथ 21 दिसम्बर, 1920 को 11 बजे दोपहर धमतरी पधारे। गाँधी जी के आगमन के पूर्व ही ज़ुर्माने की सज़ा वापस ले ली गई। अँग्रेज़ अफ़सरों का दमनचक्र समाप्त हो गया। गाँधी जी ने धमतरी और कंडेल की सभा में इस अंचल के किसानों की प्रशंसा की। उन्हें सफल संघर्ष के लिए बधाई दी और नागपुर के काँग्रेस अधिवेशन में उपस्थित होने का आह्वान किया। पं. सुंदरलाल शर्मा के आमंत्रण पर गाँधी जी के प्रथम प्रवास को एक ऐतिहासिक घटना कहा जा सकता है।

सन् 1921 में काँग्रेस अधिवेशन संगठन को मज़बूत करने के लिए विधिवत् सदस्यता-अभियान प्रारंभ हुआ। पं. सुंदरलाल शर्मा ने धमतरी तहसील का दौरा किया और उनके प्रयास से 4553 सदस्य काँग्रेस के साथ सक्रिय रूप से जुड़ गये। धमतरी के समीप परसवानी ग्राम में आयोजित राजनैतिक परिषद् पं.सुंदरलाल शर्मा की अध्यक्षता में सफलतापूर्वक संपन्न हुई।

सन् 1922 में जब श्यामलाल सोम के नेतृत्व में जंगल से लकड़ी काटने का सत्याग्रह प्रारंभ हुआ, तब सुंदरलाल शर्मा और नारायणराव मेघावाले को इस सत्याग्रह में भाग लेने तथा प्रोत्साहित करने के आरोप में श्यामलाल सोम सहित गिरफ़्तार कर लिया गया। 8 माह से लेकर 9 वर्ष की सजा सुनाने के बाद सभी को रायपुर जेल में बंद कर दिया गया। नारायणराव मेघावाले सन् 1923 में जब जेल से रिहा हुए, तब जेल में उन्हें पं.सुंदरलाल शर्मा ने अभिनंदन-पत्र भेंट किया, जो इस प्रकार था - पूज्य सुप्रसिद्ध देशभक्त श्रीमंत पं.नारायण राव विट्ठलराव फड़नवीस महोदय श्रीमन्।

दोहा -

जाओ प्रियवर मुक्त हो बंधन के दिन काट
तेरे हित में हैं खड़े, लाखों जोहत बाट
अष्टमास विश्राम करि फिर नूतन बलधार
जाओ भिड़ जावो सुदृढ़, करो देश उद्धार
यह भारत जौ लौ नहीं, फिर स्वतंत्र व्है जाय
चाहे मर मिट जाइये, मत बैठिये थिराय

तन-बल, धन-बल, बाहु-बल यह जीवन अरु प्राण
भारत माँ के चरण में कर दीजय बलिदान
जौ लौ रग में शक्ति है, तन मैं जब लौं प्राण
सोवत जागत रैन दिन, रहै देश को ध्यान
कैसे मेरे देश के, दारुण दुख मिट जाय
कैसे उन्नति शिखर में फिर यह देश दिखाय
निर्मल मन अल्पज्ञता, होत दीनता दूर
पर दासता अरु फूट सब, फूटै चकनाचूर
घर-घर सुखी समृद्धता, दीर्घायुष बलिदान
नित्य अभय अरु प्रेम से, पूरित हो सब काम
भारत कीरत की ध्वजा, फिर जग म फहराय
राम राज्य सतयुग बहुरि, फिर इक बार दिखाय
जाओ प्रियवर सिमिट सब, यहि विधि करो प्रचार
अकचकाय जिहि देख के, देहु शत्रु मुँह मारि
जगदीश्वर हम सबन में, करि हैं अवसि सहाय
व्है हैं हिन्द स्वतंत्र फिरि, जामे संशय नाय

निवेदक- सुन्दरलाल शर्मा, हामिद अली, भगवती प्रसाद मिश्र एवं अब्दुल रऊफ़ ख़ां कृष्ण जन्म स्थान (जेल के लिए प्रयुक्त)।

सन् 1923 में पं.सुंदरलाल शर्मा और नारायण राव मेघावाले के नेतृत्व में 100 स्वयंसेवकों का जत्था काकीनाड़ा-अधिवेशन में भाग लेने के लिए रवाना हुआ। सात सौ मिल पदयात्रा करके यह जत्था काकीनाड़ा पहुँचा। पं. सुंदरलाल शर्मा और नारायण राव मेघावाले ने बस्तर के आदिवासी अंचल में गाँधी जी के आंदोलन का जमकर प्रचार किया।

सन् 1930 के अगस्त माह में रुद्री के समीप स्थित नवागाँव में जंगल-सत्याग्रह प्रारंभ हुआ। 22 अगस्त को प्रात: सत्याग्रह के लिए नियुक्त नारायण राव मेघावाले और नत्थू जी जगताप को गिरफ़्तार कर लिया गया। समाचार मिलते ही पं.सुंदरलाल शर्मा राजिम से धमतरी के लिए रवाना हुए, लेकिन अभनपुर में ही उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। इधर धमतरी के स्वतंत्रता-आंदोलन के इतिहास में पहली बार घास काटने वाले सत्याग्रहियों पर गोली चलाई गई। इस गोली-चालन में मीधू और रतनू घायल

हुए। मीधू की रायपुर जेल में मृत्यु हो गई।

सन् 1933 में अनाथालय की स्थापना सहित धमतरी तहसील (अब ज़िला) में पं. सुंदरलाल शर्मा ने स्वतंत्रता-आंदोलन में नेतृत्व एवं मार्गदर्शन किया। उनके मार्गदर्शन में स्वतंत्रता की जो अपूर्व चेतना जागृत हुई, वह लगातार लोगों के बीच फैलती चली गई। 28-12-1940 के दिन पं. सुंदरलाल शर्मा की प्रखर ज़िन्दगी विराम पा गई, लेकिन उनके द्वारा जो स्वाधीनता की मशाल जलाई गई, वह कभी बुझने नहीं पाई।

संदर्भ-सहयोग -

1. स्व. हरिठाकुर द्वारा 'छत्तीसगढ़ सेवक' में लिखित पं. सुंदरलाल शर्मा की जीवनगाथा, वर्ष-38, अंक 33, तारीख 20 दिसम्बर 2001 .
2. राष्ट्रीय जागरण के प्रकाश-पुंज पं.सुंदरलाल शर्मा- केयूरभूषण, 'लोकाक्षर', वर्ष-5 अंक-20 जनवरी-फरवरी-मार्च 2003.

❖

पं. सुंदरलाल शर्मा : *विद्वानों के विचार एवं टिप्पणियाँ*

■ श्रीमती शान्ति यदु

छत्तीसगढ़ की उर्वरा भूमि न केवल वन-संपदा, खनिज-संपदा एवं जल-संपदा के लिए सुविख्यात है, बल्कि अपनी सांस्कृतिक विरासत की दृष्टि से भी काफी समृद्ध है। छत्तीसगढ़ की यह वही यशस्वी धरा है, जिसने एक ओर तो श्रम-शक्ति और कृषि-संस्कृति का विकास किया तो दूसरी ओर वह ऋषियों और मुनियों की तपश्चर्या का केन्द्र भी बनी। मर्यादापुरुषोत्तम राम की माता कौशल्या का अवतरण इसी भूमि पर हुआ था। जगत्-जननी सीता या यों कहें राम द्वारा निर्वासित सीता ने यहीं अपने दोनों पुत्रों- लव और कुश को जन्म देकर राम के वंश को अपने लहू से सींचा था और उन्हें इतना सशक्त बनाया था कि राम भी अपने पुत्रों के सम्मुख खड़े न हो सके । छत्तीसगढ़ की भूमि इतनी पावन है कि इसके साथ एक के बाद एक अनेक स्वर्णिम पृष्ठ इतिहास और संस्कृति के जुड़ते गए और आगे आने वाली पीढ़ी को निरंतर एक परम्परागत सांस्कृतिक पृष्ठभूमि नैसर्गिक रूप में प्राप्त होती चली गई। यही कारण है कि इस धरा को अनेक महान् विभूतियाँ उपलब्ध हुईं और इन्हीं में से एक थे पं. सुन्दरलाल शर्मा, जिन्हें अपने महान् व्यक्तित्व एवं कृतित्व के लिए तत्कालीन विद्वानों एवं जनमानस द्वारा यशस्वी और इतिहास रचने वाली टिप्पणियों, सम्मानजनक कथनों और आदर्श उपाधियों से विभूषित किया गया। आदर या सम्मान वस्तुतः व्यक्ति को नहीं , बल्कि उसके कार्यों एवं सेवाओं के लिए मिला करता है । अतः इस संदर्भ में पं. सुंदर लाल शर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की चर्चा करना भी प्रासंगिक व समीचीन होगा। पं. सुंदर लाल शर्मा का जन्म सन् 1881 में छत्तीसगढ़ के तीर्थ राज राजिम के समीप 'चमसुर' नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिता जिया लाल एक मालगुजार थे। उनकी माता देवमति स्नेह की एक प्रतिमूर्ति और आदर्श माँ थीं। पं. सुंदर लाल शर्मा को एक सुसंस्कृत, समृद्ध और एक आदर्श प्रगतिशील परिवार विरासत में मिला था। परिवार में उनका समाजिकीकरण कुछ इस ढंग से हुआ कि वे एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी और एक निष्ठावान कर्मयोगी ही बन गए। उनको ऐसा संस्कार मिला कि उनका संपूर्ण जीवन सेवामय हो गया। उनके हृदय में मनुष्य, समाज, अपनी भूमि एवं देश के प्रति कुछ ऐसी आदर्श भावनाएँ संचरित हुईं कि वे एक महा मानव ही बन गए और विद्वानों की यशस्वी

टिप्पणियों और कीर्तिमान कथनों के सच्चे हकदार भी सिद्ध हुए।

पं. सुन्दर लाल शर्मा की आरंभिक शिक्षा-दीक्षा गाँव में ही हुई, किन्तु कालान्तर में उन्होंने हिन्दी, अँग्रेजी, उर्दू, मराठी, बँगला, उड़िया, आदि के साथ ही संस्कृत भाषा का भी गहन अध्ययन किया। विभिन्न भाषाओं के प्रति उनका लगाव और अध्ययन उनकी भाषायी एकता को ही उद्घाटित करता है। यद्यपि पं. सुन्दर लाल शर्मा ने अन्य तत्कालीन रचनाकारों की तरह ब्रज भाषा और खड़ी बोली में भी अपने विचारों एवं भावनाओं को अभिव्यक्तत किया है, किन्तु उन्होंने अपने लेखन में सर्वाधिक महत्व अपनी मातृ-भाषा छत्तीसगढ़ी को ही दिया है। वे जीवन-पर्यन्त छत्तीसगढ़ी भाषा की साधना में दिन-रात संलग्न रहे। चाहे गद्य हो या पद्य हो, उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम प्रमुख रूप से छत्तीसगढ़ी भाषा को ही बनाया। उन्हें छत्तीसगढ़ी गद्य और पद्य का प्रवर्तक भी कहा जाता है। छत्तीसगढ़ी भाषा में लिखने के मूल में उनके पास ठोस कारण व तर्क थे। उन्होंने लिखा भी था - ''किसी भी प्रांत में मातृ-भाषा का प्रचार स्वाभाविक प्रेम और श्रद्धा के कारण ही हो सकता है। क्या इतने पर भी हमारे प्रांत के विद्वान् लोग अविद्या-अंधकार से ग्रसित अपने-अपने छत्तीसगढ़स्थ भाइयों में विद्या के प्रचार करने व अच्छे भावों को भरने के विचार से इस भाषा के साहित्य-भण्डार में अपनी शक्ति का कुछ भी सदुपयोग न करेंगे ? हम भी चाहते हैं कि राष्ट्र-भाषा हिन्दी ही हो, परंतु प्रान्तीय भाषा की उन्नति के बिना विश्व-शिक्षा का सर्वतोन्मुकी प्रचार होना कोरी कल्पना मात्र है। भारत वर्ष के अन्य भागों की तुलना में इस प्रान्त का बहुत पीछे रहने का मूल कारण मातृ-भाषा के साहित्य का अभाव ही है'' - पं. सुंदरलाल शर्मा की छत्तीसगढ़ी भाषा में लेखन के मूल में शायद यह अवधारणा रही होगी कि मातृ-भाषा के प्रति मनुष्य का सहज लगाव होता है, क्योंकि उसे अपनी मातृ-भाषा अपने जन्म के साथ ही प्राप्त हो जाती है और इसके माध्यम से हृदय और आत्मा की बात स्वाभाविक और सहज ढंग से व्यक्त की जा सकती है, क्योंकि व्यक्ति अपनी मातृ-भाषा में इतना रचा-बसा और रमा होता है कि उसे अपनी बात को व्यक्त करनेमें कहीं कोई कठिनाई नहीं होती। यह भी सच है कि अज्ञानता के गर्त में डूबे हुए अशिक्षित एवं पिछड़े भागों में चेतना पैदा करने एवं कल्याणकारी-विकास कार्यों को करने के लिए मातृ-भाषा से अधिक सशक्त और कारगर माध्यम अन्य कोई नहीं हो सकता, क्योंकि मनुष्य अपनी मातृ-भाषा के साथ भावनात्मक रूप से जुड़ा होता है।

पं. सुन्दरलाल शर्मा को साहित्य की प्रेरणा ''मराठा-केसरी'' से मिली थी और वे इसके सुधी और नियमित पाठक थे। पं. सुन्दर लाल शर्मा ने काव्य, नाटक, उपन्यास,

भक्ति-काव्य, जीवनी, व्यंग्य आदि प्रायः सभी विधाओं में लिखा। उन्होने लगभग 29 पुस्तकों का सृजन किया, जिनमें से कुछ तो प्रकाशित हैं, किन्तु अधिकांश अप्रकाशित पाण्डुलिपियाँ ही है । उन्होने छत्तीसगढ़ी दान लीला (काव्य), राजिम प्रेम-पीयूष (नाटक), रघुराज गुण कीर्तन (काव्य), करुणा पच्चीसी (भक्ति काव्य)कवि विश्वनाथ प्रसाद (जीवनी), प्रहलाद चरित्र (नाटक), सच्चा सरदार (उपन्यास), पार्वती परिणय (नाटक, ध्रुव चरित्र (संगीत आख्यान), उल्लू उदार (उपन्यास), कंस वध (काव्य), रामायण बालकाण्ड (काव्य), राजिम क्षेत्र महात्मय, श्री कृष्ण जन्म आख्यान, काव्यामृत वर्षिणी, स्फुट पद्य संग्रह, भजन संग्रह, सतनामी भजन माला एवं सद्गुरुवाणी आदि हैं। उपरोक्त कृतियों में कुछ को छोड़ कर अधिकांश कृतियों की अप्रकाशित पाण्डुलिपियाँ हैं। पं. सुन्दर लाल शर्मा की कृति "छत्तीसगढ़ी दान लीला" एक अत्याधिक चर्चित कृति रही है। इस कृति की प्रशंसा करते हुए पं. हीरा लाल काव्योपाध्याय ने लिखा है - "जब भी छत्तीसगढ़ी भाषा का इतिहास लिखा जाएगा, "छत्तीसगढ़ी दान लीला" के रचनाकार पं. सुन्दर लाल शर्मा छत्तीसगढ़ी के प्रथम कवि माने जाएँगे" 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' के संबंध में माधवराव सप्रे ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा था - "मुझे विश्वास है कि भगवान श्री कृष्ण की लीला के द्वारा मेरे छत्तीसगढ़िया भाइयों का कुछ सुधार हुआ होगा"। संदेह नहीं कि "छत्तीसगढ़ी दान लीला" में व्यक्त श्री कृष्ण-राधा एवं गोपियों के प्रेम-प्रसंगों की जीवन्त और प्राणवान अभिव्यक्ति हुई है। पं. सुंदर लाल शर्मा की छत्तीसगढ़ी भाषा में सुंदर और जीवन्त अभिव्यक्ति को दृष्टिगत रखते हुए पं. भुवन लाल मिश्र ने उन्हें छत्तीसगढ़ी भाषा का 'जयदेव' कहा है। डॉ. खूबचंद बघेल ने छत्तीसगढ़ के तीन लाल घासी, सुन्दर और प्यारे लाल को सत्यम्, शिवम् सुन्दरम् की प्रतिमूर्ति निरूपित किया है।

पं. सुन्दर लाल शर्मा न केवल छत्तीसगढ़ी भाषा के गद्य और पद्य के प्रवर्तक थे, बल्कि वे एक संघर्षशील और जुझारू स्वतंत्रता सेनानी भी थे। वे जीवन-पर्यन्त ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध शंखनाद करते रहे। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें विद्रोही करार कर दिया था। वे जब भी अँग्रेज़ी हुकूमत के विरोध में आवाज़ उठाते अथवा धरना आंदोलन करते तो ब्रिटिश सरकार उन्हें सज़ा देने के लिए जेल भेज देती। पं. सुन्दर लाल शर्मा को जब भी अवसर हाथ लगता, तो वे कोई न कोई आंदोलन ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध खड़ा कर देते । उन्होने ब्रिटिश हुकूमत के विरोध में एक अच्छा-खासा वातावरण और जनमत तैयार कर लिया था। सन् 1920 में धमतरी में "कन्देल नहर सत्याग्रह" हुआ था, जिसका नेतृत्व पं. सुन्दर लाल शर्मा ने ही किया था। कृषकों ने कन्देल नहर के

पानी के संबंध में बने ब्रिटिश सत्ता के क़ानूनों का पुरज़ोर उल्लंघन किया और सत्याग्रह आंदोलन शुरू कर दिया। यह सत्याग्रह आंदोलन इतना प्रभावशाली था कि इसकी पूरे देश में बड़ी अच्छी प्रतिक्रिया हुई और इसे राष्ट्रव्यापी ख्याति मिली। यहाँ तक कि महात्मा गाँधी ने भी धमतरी के इस कन्देल नहर सत्याग्रह को दूसरा "बारडोली" सत्याग्रह कहा।

पं. सुन्दर लाल शर्मा का महात्मा गाँधी से समय-समय पर सान्निध्य और संपर्क होता रहा और उन्हीं के प्रयास से सन् 1920 में गाँधी जी का रायपुर आगमन हुआ था। गाँधी जी से प्रेरणा पाकर तो पं. सुन्दर लाल शर्मा और भी प्रबल और प्रखर स्वतंत्रता सेनानी बन गए। वे आए दिन अँग्रेज़ों के विरुद्ध कुछ न कुछ उठापटक कर के जन-मानस को ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध चेतनशील बनाते रहते थे और अँग्रेज़ परेशान होकर उन्हें जेल में डाल देते, किन्तु वे जेल में भी चुप नहीं बैठते और कुछ न कुछ करते ही रहते थे। उन्होने जेल में रह कर ही एक हस्त लिखित पत्रिका - "श्री कृष्ण जन्म स्थान समाचार" नाम से निकाली। इस पत्रिका के माध्यम से वे अँग्रेज़ों के द्वारा आन्दोलनकारियों के प्रति किए जाने वाले अत्याचारों एवं यातनाओं का दो टूक शब्दों में पर्दाफाश करते और अँग्रेज़ी शासकों की क्रूरता की जी खोल कर भर्त्सना और निन्दा करते। जेल के अधिकारी बौखला उठते और उन्हें कागज़ और कलम उपलब्ध कराना बंद कर देते, किन्तु पं. सुन्दर लाल शर्मा कब रुकने वाले थे, वे कोई न कोई जुगाड़ और उपाय जुटा ही लेते। पं. सुन्दर लाल शर्मा ने ब्रिटिश सत्ता के विरोध में 'छत्तीसगढ़ी रामायण' का सृजन भी किया था, जिसे, ज़ब्त कर लिया गया था। पं. सुन्दर लाल शर्मा अपने सिद्धान्तों के पक्के और एक सच्चे देश-भक्त ते। वे कहा भी करते थे कि "सत्य के लिए डरो मत, चाहे जियो चाहे मरो।" "कर्मवीर" ने जेल में बन्द आन्दोलनकारियों में पं. सुन्दर लाल शर्मा एवं नारायण राव मेघावाले के संबंध में लिखा था - "इन दोनों चरित्रवान एवं मातृभूमि केप्रति समर्पित नेताओं ने जेल में नौकरशाही का मखौल उड़ाया तथा जमानत पर रिहा होने से इंकार कर दिया और जनता को एक वर्ष तक शान्त रहने के लिए कहा। पं. सुन्दर लाल शर्मा एवं मेघावाले ये दोनों ही बहादुर देशभक्त हैं। ये दोनों नेता अन्याय के सम्मुख झुकने के बजाय जेल जाना ज़्यादा पसंद करते हैं। इन नेताओं को सम्मेलन में बधाइयाँ दी गईं। अब उन्हें कारावास भेज दिया गया है। उनका यह त्याग स्पष्ट रूप से यह सिद्ध करता है कि भारत के देश-भक्तों के लिए जेल ही एक सम्मानजनक स्थान है"।

जिस समय पं. सुंदर लाल शर्मा का अविर्भाव हुआ था था, उस समय एक और ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने की लड़ाई चल रही थी, तो दूसरी ओर समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुप्रभावों, जातिवाद, वर्गभेद, अशिक्षा, अज्ञानता, अंध-विश्वास, अवांछित रूढ़ियों एवं स्त्रियों की दयनीय स्थिति आदि अनेक सामाजिक विसंगतियों, विकृतियों एवं विद्रूपताओं को दूर करने के लिए समर्पित संघर्ष चल रहा था और समाज-सुधार करने के लिए अनेक समाज-सुधारक और समाज-सेवी आगे आकर पूर्ण मनोयोग से काम कर रहे थे। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, शरतचन्द्र, ज्योतिबा फुले आदि इस दिशा में अपनी भरपूर सेवायें जन-मानस को दे रहे थे। देश की एकता और अखण्डता के लिए भी संघर्ष जारी था। देश के वरिष्ठ स्वतंत्रता सेनानियों और चिन्तनशील समाज-सुधारकों और समाज-सेवियों का अभिमत था कि जब तक देश से जातिवाद के आधार पर ऊँच-नीच, छोटे-बड़े की भावनाओं का अन्त न होगा, तब तक देश की एकता और अखण्डता की परिकल्पना नहीं की जा सकती और हमारे देश की शक्ति बिखरी रहेगी और उसकी सामूहिक शक्ति का विकास होना संभव नहीं होगा। अतः सर्वप्रथम मनुष्य और मनुष्य के बीच की खाई और दरार को पाटने का प्रयास प्रारंभ हुआ और लोगों के बीच सद्भाव और सहृदयता का वातावरण बनाने और भाई-चारे की भावना के विकास के लिए जन-चेतना पैदा करने के पूरे देश में प्रयास होने लगे।

पं. सुन्दर लाल शर्मा ने छत्तीसगढ़ में समाज-सुधार करने का बीड़ा उठाया। सर्वप्रथम उन्होने अस्पृश्यता अर्थात् छुआछूत की भावना को समाप्त करने के लिए सुनियोजित ढंग से काम करना प्रारंभ किया। उन्होने यह भली भाँति समझ लिया था कि जब तक छत्तीसगढ़ में छुआछूत की भावना दूर नहीं होगी, तब तक छत्तीसगढ़ का कल्याण व विकास संभव नहीं हो सकता। अतः सर्वप्रथम उन्होने अछूतोद्वार का कार्य हाथ में लिया। वे हरिजन बस्तियों में जाते और उनके स्वाभिमान को जगाते कि वे भी भारत के नागरिक हैं और छत्तीसगढ़ उनका अपना भी निवास-स्थान है और उन्हें अपने कल्याण व विकास का पूर्ण अधिकार है। उन्हें अपने अधिकारों एवं अस्तित्व की रक्षा केलिए चुपचाप न बैठ कर संघर्ष करना चाहिए और अपनी मनुष्य-अस्मिता की रक्षा के लिए सजग बनना चाहिए। इस तरह से पं. सुन्दर लाल शर्मा अस्पृश्य लोगों के बीच स्वाभिमान जगाते और उनमें पैठी हीनता की भावना को दूर करने का भरसक प्रयत्न करते। पं. सुन्दर लाल शर्मा ने उन्हें जनेऊ धारण करने की प्रेरणा दी। पं. सुन्दर लाल शर्मा समाज की सबसे पीछे वाली कतार के दलित लोगों को सामाजिक न्याय दिलाने

के लिए जीवन-पर्यन्त संघर्ष करते रहे। पं. सुन्दर लाल शर्मा के अछूतोद्धार के कार्यों को दृष्टिगत रखते हुए महात्मा गाँधी ने उन्हें स्वयं से दो वर्ष बड़ा कहा और उन्हें इस मामले में अपना गुरु भी माना। पं. सुन्दर लाल शर्मा को उनके द्वारा मानवीय मूल्यों पर आधारित कृत्यों, उनके शुद्ध और समर्पित आचरण एवं सदाशयता की उदार भावना आदि अनेक सात्विक गुण-धर्म एवं कर्मयोगी स्वभाव के कारण ही उन्हें 'छत्तीसगढ़ का गाँधी' कहा जाने लगा। वस्तुतः सम्मानजनक टिप्पणियाँ, यशस्वी उपाधियाँ एवं प्यार व सम्मान किसी मनुष्य को नहीं, बल्कि उनके कीर्तिमान स्थापित करने वाले कार्यों को ही मिलता है। छत्तीसगढ़ के सपूत पं. सुन्दर लाल शर्मा को भी यशस्वी टिप्पणियाँ और विद्वानों के सहृदयी विचार तथा आदरसूचक प्रशंसा और उपाधियाँ सहज ही नहीं मिली, बल्कि ये उन्हें अपने निर्भीक किन्तु सदाशयी व्यक्तित्व एवं कर्मयोगी कृतित्व के कारण ही उपलब्ध हुईं। लोकोक्ति भी है कि जैसा बीज डालोगे, वैसी ही फ़सल काटोगे। पं. सुन्दर लाल शर्मा ने भी एक ऐसा बीज बोया था कि वे छत्तीसगढ़ी भाषा के गद्य और पद्य के प्रवर्त्तक, अछूतोद्धार के प्रेरक, बहादुर देशभक्त और छत्तीसगढ़ के गाँधी के साथ-साथ एक ऐसे वट वृक्ष भी बन गए, जो एक पितामह की तरह आज भी छत्तीसगढ़ को नित्य नई प्रेरणा दे रहे हैं।

छत्तीसगढ़ में दलित चेतना के संवाहक पंडित सुंदरलाल शर्मा

■ डॉ. परदेशीराम वर्मा

साहित्य और राजनीति के क्षेत्रों से अर्जित अपनी अमोघ शक्तियों का समाज की जड़ परंपरा और अमानवीय व्यवहारों पर प्रहार करने के लिए जिन महापुरुषों ने सफल प्रयोग किया, उनमें पंडित सुंदरलाल शर्मा राष्ट्रीय क्षितिज पर देदीप्यमान नेताओं के समकक्ष छत्तीसगढ़ी सिद्ध हुए। उन्होंने समतावादी आंदोलन से छत्तीसगढ़ का गौरव बढ़ा दिया।

छत्तीसगढ़ के राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त साहित्यिक सपूत पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने लिखा है कि प्रेमचंद की कहानियों में जो जातीय विद्वेष है, उसके लिए छत्तीसगढ़ में स्थान नहीं है। साहित्य समाज का दर्पण है इसीलिए प्रेमचंद की कहानियों में जो जातीय वैषम्य आया, वह उनकी रचना की भूमि का रूप था। छत्तीसगढ़ तब भी जातीयता के मारक ज़हर से उस तरह संत्रस्त नहीं था, जिस तरह गंगा के कछार में रहने वाले लोग थे और यह कबीर और गुरु बाबा घासीदास की अमृत वाणियों से संस्कारित होने के कारण ही संभव हुआ। लेकिन तब भी छत्तीसगढ़ में भी सवर्णों, पिछड़ों का एक घाट था और उसी तालाब में दलितों का दूसरा घाट हुआ करता था। नाई, धोबी पाँच पौनी केवल सवर्णों, पिछड़ों के सेवक थे। दलितों की स्थिति अछूत की थी। छत्तीसगढ़ की आत्मा को पहचानने वाले संतों, साहित्यकारों ने सतत संघर्ष किया। पंडित सुंदरलाल शर्मा ने अपने कौशल और साहस से समता के गीत को प्रभावी राग में गाकर अमरत्व प्राप्त किया।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने 20 जुलाई, 1924 के दिन बंबई में बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना की। अछूतोद्धार के लिए इस सभा की स्थापना हुई। पं. सुंदरलाल शर्मा 1917 से अछूतोद्धार का काम कर रहे थे। महात्मा गाँधी को जब यह जानकारी मिली, तो उन्होंने शर्मा जी को अपना गुरु कहा।

1933, 23 नवंबर को गाँधी जी दूसरी बार छत्तीसगढ़ आए। तब तक पं. सुंदरलाल शर्मा छत्तीसगढ़ में अछूतोद्धार के लिए बहुत काम कर चुके थे।

1917 में राजमहन्त अंजोरदास तथा गजाधर राव मुंगेली वाले के सहयोग से मुंगेली में एक सभा का आयोजन पं. सुंदरलाल शर्मा ने किया। इस सभा में छत्तीसगढ़ की प्रमुख जातियों के अगुवा शामिल थे। सर्वजातीय समभाव छत्तीसगढ़ की असली शक्ति है, यह शर्मा जी जानते थे। इसीलिए वे सदैव सबका मान करते हुए अछूतोद्धार

का कार्यक्रम सफल बनाते चलते थे।

1925 में उन्होंने हरिजनों को मंदिर में प्रवेश दिलाने के लिए आंदोलन प्रारंभ किया। 1925 में भोई जाति के लोगों को राजीवलोचन मंदिर में प्रवेश का आंदोलन चला और शीघ्र ही सभी जाति के लोगों को राजीवलोचन मंदिर में प्रवेश का अधिकार प्राप्त हो गया।

पं. सुंदरलाल शर्मा ने नाई, धोबी, पाँचों पौनी की सेवा सबको दिलाने के लिए आंदोलन प्रारंभ किया। इस आंदोलन से कुपित कुछ लोगों ने उन्हें ब्राह्मण-समाज से बहिष्कृत करने का प्रयत्न किया। सतनामी ब्राह्मण कहकर उनका उपहास भी उड़ाया गया, लेकिन वे महामानव थे। उन्होंने परवाह नहीं की। डॉ. खूबचंद बघेल ने बाद में जब अंतर्जातीय विवाह को समर्थन देते हुए अपनी बिटिया रामचंद्र देशमुख को ब्याह दी तब भी उन्हें समाज के एक वर्ग ने पत्तल उठाने का दण्ड दिया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

महापुरुषों को जो दिव्यदृष्टि नैसर्गिक रूप से मिली होती है, उसी से वे भविष्य की तस्वीर देख लेते हैं। सामान्य लोग उन्हीं के पदचिन्ह पर बहुत बाद में चलकर गर्वित होते हैं और उनका जय-जयकार करते हैं।

महापुरुषों को न उपेक्षा से हैरत होती है न जयकारे से उन्हें गर्व होता है। वे उसी गति और शक्ति से जनसेवा में लगे रहते हैं। तमाम उपेक्षा के बावजूद पं. सुंदरलाल शर्मा निरंतर अपने संकल्प के अनुरूप बढ़ते रहे। उन्होंने 1927 में रायपुर में सतनामी आश्रम की स्थापना की। इसीलिए गाँधी जी ने उन्हें गुरु माना। वे गाँधी जी से आगे चल रहे थे। अछूतोद्धार का ऐसा सफल संकल्प पूरे देश में पं. सुंदरलाल ही ले सके। वे तपस्या का फल सब को देना चाहते थे। उन्होंने अकेले श्रेय लेने का यत्न नहीं किया। 1924 में कानपुर में काँग्रेस का सम्मेलन हुआ। उस सम्मेलन में पं. सुंदरलाल शर्मा सतनामी समाज के अग्रगण्य व्यक्तियों के साथ गए। गुरु अगमदास जी, गुरु गोंसाई राजमहंत नैनदास जी, राजमहंत अंजोरदास जी, राजमहंत विसालदास जी, मालगुज़ार रतिराम जी उनमें प्रमुख थे। सतनामी समाज के अत्यंत सम्मानित परमपूज्य जन पं.सुंदरलाल शर्मा के अंतरंग मित्र थे।

इसी मित्रता का यह सुफल था कि इन महापुरुषों ने पं. सुंदरलाल शर्मा को सहर्ष संस्कारित करने और अपने अछूतोद्धार के संकल्प के अनुरूप आगे बढ़ने हेतु अधिकार-पत्र दिया। यह एक बड़ी उपलब्धि थी।

सतनामी समाज सहसा किसी को ऐसा सम्मान नहीं देता, अगर समाज के गुरुओं और पूज्य जनों को भरोसा न होता। उनकी आशा पर पं. सुंदरलाल शर्मा खरे

उतरे। इसीलिए वे गाँधी जी से प्रशंसित हुए।

पं. सुंदरलाल शर्मा सृजन के सूत्रधार थे। छत्तीसगढ़ की गौरवशाली परंपरा को उन्होंने सुदृढ़ किया। आज छत्तीसगढ़ एक ऐसा निरापद प्रांत माना जाता है, जहाँ द्वेष, विद्वेष के लिए देश के अन्य हिस्सों की तुलना में लगभग न के बराबर स्थान है। जातीयता, ऊँच-नीच, वर्गीय खाई से तनावग्रस्त दिगर प्रांतों के लोग छत्तीसगढ़ की शांति की प्रशंसा किए बग़ैर नहीं रहते। 12 गाँवों के मालगुज़ार के घर जन्मे सम्मानित परिवार के सदस्य और साहित्य सृजन के कारण वंदित पं. सुंदरलाल शर्मा ने स्वहित को जनहित के लिंए न्योछावर कर दिया।

1892 से 1904 ई. तक लगभग 8 वर्ष वे काँके र में रहे। ग्यारह वर्ष की उम्र से लेकर चढ़ती जवानी के दिनों तक वे कांकेर में रहे। छत्तीसगढ़ में जातीयता का ज़हर देश की तुलना में सर्वग्रासी नहीं था, फिर भी पं. सुंदरलाल शर्मा ने उसकी जड़ों पर मट्ठा डालने का संकल्प लिया, जिसका सफल हम देख रहे हैं।

काँकेर में जीवन के श्रेष्ठ 8 वर्ष बिताने वाले पं. सुंदरलाल शर्मा का बस्तर आज उग्रवाद की चपेट में है। यह बड़ा संकट है। छत्तीसगढ़ को फिर पं. सुंदरलाल शर्मा के आदर्शों पर चलकर इसे सही दिशा देने वाले युग-पुरुष की जरूरत है। वे होते, तो शायद असंतुष्ट और नाराज़ वनपुत्रों की हुंकार बहुत पहले सुन चुके होते। सतनामियों को उन्होंने तब मंदिर प्रवेश कराया जब घाट-घठौंदा में प्रवेश तक वर्जित था। सतनामी भाई सवर्णों के घाटों में आकर नहा नहीं सकता था। तब मंदिर में प्रवेश की बात कोई क्रांतिवीर ही सोच सकता था।

आज राजनैतिक मजबूरी के कारण लोग जातीय सौमनस्य का स्वांग भरते हैं लेकिन पं. सुंदरलाल शर्मा ने जब समता का उद्घोष किया, तब केवल गुरु-वचन का आदर्श लेकर वे समर में कूद पड़े-

"मनखे-मनखे ल जान सगा भाई के समान"

उन्होंने सतनामियों को जनेऊ भी दिया। उन्होंने अपने समतुल्य सबको मानकर दिखा दिया।

पं. सुंदरलाल शर्मा की अमर कृति है 'दानलीला'। शब्द की यात्रा का अपना विशेष महत्व होता है। 'दानलीला' शब्द को उन्होंने अपना जीवन-दर्शन भी बनाया। वे अपना ज्ञान, धन और सर्वस्व दान करते रहे।

1905 में वे दानलीला लिख चुके थे। लगातार श्रेष्ठ कृतियों का सृजन करते हुए वे सामाजिक-राजनैतिक आंदोलनों में भी सक्रिय रहे। न केवल सक्रिय, बल्कि उनके नेतृत्वकर्ता भी रहे।

आज छत्तीसगढ़ राज्य बन गया है। हम राज्य बनने की खुशी की खुमारी से नहीं उबर पा रहे हैं।

"कोनो है झालर धरे, कोनो हे घड़ियाल।
उत्ता धुर्रा ठोके, रन झाझर के चाल॥"

पं. सुंदरलाल शर्मा की कृति 'दानलीला' की उपरोक्त पंक्तियाँ इस संदर्भ में याद हो आती हैं।

किसान-सम्मेलन का आयोजन, अनाथालय का निर्माण, सतनामियों का मंदिर-प्रवेश, सतनामी आश्रम की स्थापना, राजिम में ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना, धमतरी में राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना, स्वदेशी दुकान की स्थापना तथा 1918 से ही खादी का उपयोग-उपरोक्त अवदान और काम को हम देखते हैं, तो आश्चर्य होता है। विपुल साहित्य-लेखन के साथ ऐसे क्रांतिकारी और ऐतिहासिक महत्व के काम।

1922 में रायपुर की अदालत में उन्हें जेल की सज़ा भी हुई। पं. सुंदरलाल शर्मा छत्तीसगढ़ और राष्ट्र के सच्चे सपूत थे। उन्हें जेल भेजते हुए माता ने आशीष दिया- "जा बेटा, गऊ माता अऊ पिरथी माता के सेवा करबे।" शर्मा जी ने माँ के इस आशीर्वाद को सदैव आदेश की तरह माना। किसी जाति, क्षेत्र और नस्ल की सीमा को उन्होंने महत्व नहीं दिया।

राष्ट्रीय आंदोलन और छत्तीसगढ़ की सेवा, अछूतोद्धार और शिक्षा-साहित्य के लिए काम, किसान-आंदोलन और ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना। विपरीतताओं के बावजूद वे लगातार भिन्न-भिन्न दिशाओं में सफल यात्रा का प्रतिमान गढ़ते रहे। ऐसे महान गुरुओं की धरती है छत्तीसगढ़।

पं. सुंदरलाल शर्मा ने छत्तीसगढ़ को यात्रा की सही दिशा दी। उसी पथ पर बढ़कर अपनी गौरवशाली परंपरा को हम बढ़ा सकते हैं। पथ उनसे आलोकित है। पं. सुंदरलाल शर्मा ने 1907 में लिखित अपने प्रहलाद नाटक में जो चार पंक्तियाँ लिखी हैं, उससे हमारा आत्मबल तो बढ़ता ही है, हमें सदैव लगता है कि हम उनकी छत्रछाया में है -

"जिस पर आप दयालु रहेंगे,
उसका दुश्मन काह करेंगे॥
काला मुख पर शत्रु सभी,
मूँड़ पटक कर हार थकेंगे॥"

❖

दलित मुक्ति-चेतना के संवाहक : पं. सुन्दरलाल शर्मा

■ डॉ. बिहारीलाल साहू

छत्तीसगढ़ की पावन धरती धन्य हुई है, अपने कृती-पुत्र पंडित सुन्दरलाल शर्मा की जन्मदात्री होकर। महानदी की यह घाटी और उसकी माटी कृतार्थ हुई है, मानव मुक्ति का आधार बनकर। पं. सुन्दरलाल शर्मा ने अपने युग-जीवन को परतंत्रता, अस्पृश्यता और अशिक्षा की जकड़बंदी से उन्मुक्त करने का उपक्रम किया। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन लोक-कल्याण के लिए समर्पित कर दिया। उनकी सकर्मक भूमिकाओं का ही सुपरिणाम है- यह संप्रभुता सम्पन्न भारतीय गणतंत्र और छत्तीसगढ़ का एक प्रशासनिक प्रदेश के रूप में गठन।

पं. सुन्दरलाल शर्मा मूलत: सृजनधर्मी, शब्द-शिल्पी, साहित्य-मनीषी थे। उन्होंने छत्तीसगढ़ के पद्मक्षेत्र प्रयागराज राजिम के सत्साहित्यिक परिवार में जन्म लिया। उनके साहित्यिक संस्कार पितृ-पितामहिक थे। उनकी शिक्षा औपचारिक संस्थानों में नहीं, प्रत्युत स्वाध्याय के द्वारा समुन्नत हुई थी। उन्हें संस्कृत, उड़िया, बंगला, मराठी, उर्दू और गुजराती का गहन ज्ञान था। छत्तीसगढ़ी तो उनकी मातृभाषा थी ही। उन दिनों राजिम क्षेत्र की प्रतिष्ठा सारस्वत क्षेत्र के रूप में थी। वहाँ उनकी रचनाशील कला-प्रतिभा के उन्नयन के लिए अनुकूल वातावरण था। उन्होंने संस्कारधानी राजिम में अपने समानधर्मा साथियों को जोड़कर एक 'कवि-समाज' की स्थापना कर डाली। फिर क्या था, वे एक से एक महत्तर काव्यग्रंथों की रचना करने लगे, अनेक नाटक और उपन्यास भी रच डाले और देखते-देखते उनकी साहित्य-साधना प्रदीर्घ होती गई। समाज में उनकी प्रतिष्ठा एक साहित्यकार के रूप में बनने लगी। अत: शर्माजी धर्म-प्रवण मानव थे, अत: उनकी कृतियाँ पाथेय चरित्रों और मुक्ति-संदेश देने वाले आख्यानों को लेकर परिपुष्ट हैं। उन्होंने कृष्ण, राम, पार्वती, प्रहलाद और ध्रुव जैसे प्रतिष्ठ पात्रों को अपनी कलाभिव्यक्तियों का विषय बनाया। वे केवल काव्यकार न थे, प्रत्युत सर्वतोभावेन कलाकार थे, कलमकार थे। उनकी कलाधर्मिता की प्रांजल अभिव्यक्ति चित्रकला और मूर्तिकला में भी हुई है। उनकी कृतियाँ 'छत्तीसगढ़ी दान लीला' और 'छत्तीसगढ़ी रामायण' सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। ये इतिहास बनाने वाली कृतियाँ हैं। यहाँ उनकी सारस्वत-साधना के उल्लेख का

निहितार्थ उनकी सहृदयता और संवदेनशीलता का स्मरण करना है, जिससे उनके मानव-मुक्ति के पुरस्कर्ता, व्यक्तित्व को समझने में सुविधा हो।

पं. सुन्दरलाल शर्मा अप्रतिम प्रतिभा के स्वामी थे। उन्हें कोमल हृदय मिला था और संवेदनशीलता उनकी संपत्ति थी। मानव के प्रति उनमें गहन आस्था थी, करुणा थी। उन्हें अपने समकालीन मानव-समुदाय में विषाद की गहरी छाया दिखाई पड़ी। मनुष्य विविध बंधनों में जकड़ा हुआ जान पड़ा। कहीं उसे फिरंगियों की गुलामी ने, कहीं जाति-पाँति ने, तो कहीं अशिक्षा के बंधनों ने दुखी बना रखा है। संपूर्ण सामाजिक परिदृश्य विषादग्रस्त था, जैसे मानवीय उत्साह और उमंग एकबारगी काफूर हो गए थे। समाज दुर्बल और शक्तिशून्य हो गया था। उन विपरीत परिस्थितियों से मानवीय समाज को मुक्त करने की प्राथमिक आवश्यकता थी और वह कार्य धर्मोत्तर था।

पं. सुन्दरलाल शर्मा जाग्रत चेतना के कर्मवीर थे। वे कारयित्री प्रतिभा सम्पन्न स्वदेशानुरागी थे। उन्होंने दृढ़ संकल्प लिया कि वे मानवीय मुक्ति के लिए जन-जन को जागृत करेंगे, समता और स्वाधीनताा का शंखनाद करेंगे। पंडितजी का जागरण अभियान बहुआयामी था। एक ओर वे सामाजिक परिवर्तन ओर परिष्करण का पक्ष रखते हुए अस्पृश्यता से मुक्ति का उद्यम कर रहे थे और दूसरी ओर राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए सत्याग्रह का समारंभ कर रहे थे। उन्होंने बड़ी गंभीरता से यह अनुभव किया कि बिना सामाजिक शुद्धि के स्वाधीनता संभव नहीं। वे चाहते थे- स्वाधीनता का संघर्ष शुरू करने के पहले अपनी सामाजिक शक्तियों को विन्यस्त कर लेना, सामाजिक विवादों को सुलझा लेना। अपने ही समाज में अपमानित एवं अप्रासंगिक होते आदमी को उन्होंने निरापद एवं भयमुक्त करने का महत्तर कार्य किया। उसे बंधनमुक्त करने का यत्न किया। उसे उन्मुक्त करने का प्रभावी प्रयास किया। वे अपने समकालीन सामाजिक को राष्ट्रीय मुक्ति अभियान के लिए पूरी तरह समर्थ बनाना चाहते थे, जिससे राष्ट्रीय अस्मिता की प्रतिष्ठा के लिए किये जा रहे अभियान का उसे विनम्र योद्धा बनाया जा सके। इस तरह की संकल्पना पं.सुन्दरलाल शर्मा - जैसा विवेकवान व्यक्ति ही कर सकता था। यही कारण है कि उनका संपूर्ण मानव-मुक्ति-अभियान एक प्रतिमान बन गया।

यशस्वी पं.सुन्दरलाल शर्मा सच्चे अर्थों में ब्रह्मविद् ब्राह्मण और बहुज्ञानी थे। वे भली-भाँति यह जानते थे कि ईश्वर एक है। वही सर्वशक्तिमान और परम सत्य है। उसी तत्व का ही सभी वर्णों में प्रसार है, प्रतिष्ठा है। सभी जीवात्माएँ एक ईश्वर की

संतान हैं। अत: मनुष्य-मनुष्य के बीच किसी भी तरह का भेद करना परमेश्वर का अपमान है, किंतु समाज की धर्म-विषयक धारणाएँ मानवता के विरुद्ध थीं। वे स्पष्ट देख रहे थे कि हिन्दू समाज का अनाविल वर्ग अपनी परम्परागत अज्ञानता के कारण धर्म का अन्यार्थ लेता रहा है और अपनी कुत्सा से उसे विकृत अर्थ देता रहा है। हिन्दू धर्मावलंबी वर्णवादी वर्ग ने समाज को जाति-पाँति और ऊँच-नीच के दायरों में बाँट दिया है। आदमी-आदमी के बीच भेदभाव की अभेद्य दीवार खड़ी कर दी है। अस्पृश्यता की अस्वस्थ भावना ने हिन्दू समाज की एकता को खंडित किया है। इससे हिन्दू बहुल भारतीय समाज की समस्त प्रभावी शक्तियाँ क्षीण हुई हैं, मानवता का हनन हुआ है, जबकि अस्पृश्य समझा जाने वाला हरिजन वर्ग हिन्दू धर्म का ही अविभाज्य अंग है। उन्हें लगा कि भारतीय जन-जीवन के उत्थान में हरिजनों का आत्मीयकरण परम आवश्यक है। हरिजनों का त्याग या तिरस्कार हिन्दुओं के लिए ही नहीं, बल्कि समूचे हिन्दुस्तान के लिए हानिकर है। वस्तुत: मनुष्य की श्रेष्ठता उसके जन्म से नहीं, उसके चरित्र और आचरण से निर्धारित होती है किंतु उच्च वर्ग में पाई जाने वाली परमश्रेष्ठता की अहंकारपूर्ण भावना ने अस्पृश्यता के ज़हर को जन्म दिया है, जिससे मनुष्य नहीं मनुष्यता मरती है। दिव्यात्मन पं.सुन्दरलाल शर्मा जी ने अस्पृश्यता निवारण-अभियान इस अभिप्राय को लेकर आरंभ किया कि अस्पृश्यता के विष से मानव मुक्ति का अर्थ है- समाज की सभी तरह की विषमताओं से मुक्ति। वस्तुत: अस्पृश्यता अज्ञानजन्य है, मनुष्य जाति के लिए पाप है, अभिशाप है, अतएव अस्पृश्यता मुक्ति का अभियान आवश्यक, अपरिहार्य, श्रेयस्कर और काम्य है।

पं.सुन्दरलाल शर्मा छत्तीसगढ़ में सामाजिक समता के संस्थापक थे। उन्होंने अपने जीवनोन्मेष के आरंभिक दिनों में हरिजनोंद्धार का महाव्रत लिया। स्वनामधन्य श्री शर्माजी ने सन् 1917 में सर्वप्रथम सतनामी समाज से आत्मीय अंतरंगता स्थापित की और उन्हें यज्ञोपवीत धारण कराने का श्रीगणेश किया। उन्होंने दूसरे समाज सुधारकों की तरह जनेऊ तुड़वाने या छुड़वाने का नकारात्मक प्रयास नहीं किया, प्रत्युत दलितों के आत्म गौरव में, स्वाभिमान में वृद्धि हेतु सकारात्मक अनुष्ठान की शुरुआत की। उन्हें अपने इस पावन अभियान के परिणामस्वरूप अपने सगे-संबंधियों, धर्म-धुरीणों की कुत्सा और कटूक्तियों का शिकार होना पड़ा, पर वे अपने सत्संकल्पों से डिगे नहीं। उन्होंने आगे सन् 1924 में राजिम के सुप्रसिद्ध राजीवलोचन मंदिर में हरिजनों का प्रवेश कराया। तब भी उन्हें वर्णवादी अनाविलों की कुदृष्टि, विवाद और विरोध से जूझना पड़ा। वे आजीवन सामाजिक सद्भावना के विरोधी तत्वों और जातीय शुचिता के

ढपोरशंखों से भिड़ते रहे। यद्यपि तत्कालीन ब्रितानी प्रशासन के ओहदेदारों और उनके वर्णवादी विरोधियों ने उनके संघर्षपूर्ण सन्मार्ग में अनेक बलशाली बाधाएँ खड़ी कीं, तथापि वे आगे बढ़ते रहे और उनका दृढ़ संकल्पित अभियान दृढ़तर होता रहा। उन्होंने नर को नारायण से जोड़कर व धर्म को सर्वग्राह्य एवं स्वस्थ बनाने का यत्न किया। शर्माजी की मानवता की प्रतिष्ठा के लिए की गई उत्कृष्ट सेवा को लेकर महात्मा गाँधी ने अपने रायपुर प्रवास में उन्हें सार्वजनिक तौर पर अपना गुरु कहा, अपना पथ-प्रदर्शक बतलाकर उनका सम्मान किया। आगे सन् 1933 से गाँधीजी ने हरिजनोद्धार के अभियान को व्यापकता दी तथा स्वाधीनता के प्रमुख उपकरणों में उसे सम्मिलित किया, उसे प्रयुक्त किया।

पं.सुन्दरलाल शर्मा को दलित समाज से सच्चा अनुराग था। वे उनके परम हितैषी और शुभचिंतक थे। वे चाहते थे कि सतनामी भाई सुशिक्षित हों, ताकि शिक्षा का अवलंब लेकर अपने बुनियादी आधारों को वे मजबूत कर सकें। उन्होंने शुद्धाचरण पर बल दिया और नशाखोरी से मुक्त रहने की समझाइश दी। शर्मा जी ने सतनामी सज्जनों के सहयोग से बलौदाबाजार क्षेत्र में संचालित कसाई घरों को बंद कराने की मुहिम चलाई। वे खान-पान में पूरे सात्विक और शाकाहारी थे। उन्होंने दस वर्ष की उम्र में मांसाहार के विरुद्ध अपने ही घर में सत्याग्रह किया था। पं.सुन्दरलाल शर्मा ने सतनामी समाज के उन्नयन के लिए 'सतनामी आश्रम', 'हरिजन छात्रावास', 'हरिजन पुत्री शाला' और एक अनाथालय की स्थापना का ठोस कार्य किया। वे दलितों के मसीहा गुरु घासीदास के अवदानों से पूर्णतः परिचित थे। गुरु महाराज ने सामाजिक जागरण के लिए जिन सिद्धांतों और मार्गों का अन्वेषण किया था, उनका अनुसरण करते हुए पंडित जी ने 'सतनामी पुराण' नामक सद्ग्रंथ का प्रणयन किया।

श्रद्धास्पद शर्माजी का स्वदेशानुराग गहन गंभीर था। उसके लिए वे किसी भी तरह की जोखिम उठाने से पीछे नहीं रहे। उन्होंने ब्रितानी बनियागीरी से मुक्ति पाने के उद्देश्य से स्वदेशी जागरण का अभियान चलाया। पंडित जी ने स्वावलंबन के लिए स्ववित्त से स्वदेशी दुकानें खोलीं, किंतु उसका परिणाम उत्साहजनक नहीं रहा। आखिर, उनकी स्वदेशी दुकानों ने उनकी संपूर्ण संपत्ति का स्वाहा कर डाला। फिर भी, वे ताज़िंदगी स्वाधीनता का शंखनाद करते रहे।

पं.सुन्दरलाल शर्मा सच्चे सुराजी थे। उन्होंने सन् 1905 में राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश किया। मानव-मुक्ति के लिए उनके द्वारा किया गया हरिजनोद्धार का अभियान

स्वाधीनता-समर के लिए आवश्यक शक्ति के संचय का हिस्सा था। दलितों को अस्पृश्यता से मुक्ति दिलाने के लिए शुरू किए गए अनुष्ठानों के साथ उनकी लोकप्रियता बढ़ती गयी, उन्हें व्यापक जनसमर्थन मिलता गया। फिर क्या था, उन्होंने सत्याग्रह को पूरे ज़ोर-शोर के साथ चलाया और उसे आज़ादी की लड़ाई का अमोघ अस्त्र बना डाला। शर्मा जी ने ब्रिटिश नौकरशाही के दमनचक्र के विरुद्ध सन् 1920 में कंडेल का नहर सत्याग्रह किया। उसके ठीक बाद महात्मा गाँधी का आगमन हुआ और उस अंचल में गाँधी जी की अनेक सभाएँ हुईं। इससे उनके स्वाधीनता-आंदोलन को गति मिली। इसके बाद उन्होंने सन् 1923 में सिहावा का जंगल-सत्याग्रह किया, जिसमें उन्हें एक वर्ष का कठिन कारावास मिला। उनके सारे आंदोलनों में उनके विश्वस्त साथियों श्री नारायण राव मेघावाले, श्री छोटेलाल बाबू, श्री अब्दुल रऊफ़ और श्री भगवती प्रसाद मिश्र की सक्रिय भागीदारी रही। वे जनता के विश्वस्त जननायक थे, जनता के मन-प्राणों में बसते थे। वे जीवनपर्यन्त अकुण्ठ भाव से जन-जागरण और आज़ादी का अलख जगाते रहे और एक दिन 'भोर के तारे' की तरह तिरोहित हो गए.... स्वतंत्रता के स्वर्णिम प्रभात के आने के पहले, किंतु जन-मानस में आज भी उनकी स्मृति चिरस्थायी है, उनकी कीर्ति कालजयी है। प्रज्ञात्मन् पंडित सुन्दरलाल शर्मा सही अर्थों में मानव-मुक्ति के पुरस्कर्ता थे, दलित-मुक्ति चेतना के संवाहक थे। उन दिव्यात्मा की पावन स्मृति को श्रद्धा-सहित प्रणाम।

❖

पं.सुंदरलाल शर्मा के अवदानों का मूल्यांकन

■ आशिष सिंह

पं. सुंदरलाल शर्मा के अवदानों का मूल्यांकन केवल साहित्यकार अथवा स्वाधीनता-संग्राम सेनानी के रूप में नहीं किया जा सकता, बल्कि इनसे भी परे वे एक क्रांतिकारी समाज-सुधारक के रूप में याद किये जाते हैं। ब्राह्मण थे, अतः उनमें तमाम विप्रोचित गुणों और मूल्यों के दर्शन हमें होते हैं। शिक्षा का प्रबंध घर पर ही था, पिता भी विद्या-व्यसनी थे। वैसे भी, घर से बढ़कर कोई पाठशाला नहीं होती और माता-पिता से बड़ा कोई अन्य गुरु संस्कार नहीं दे सकता। शर्माजी का परिवार अत्यंत समृद्ध था। ऐसा परिवार या तो व्यसनी हो जाता है या विद्या-प्रेमी हुआ करता है।

बाल्यावस्था से ही सुंदरलाल जी की बहुमुखी प्रतिभा प्रकट होने लगी थी। हिन्दी, अँगरेज़ी, संस्कृत और उड़िया भाषा पर उनका अधिकार था, तो बांग्ला पर भी पांडित्यपूर्ण नियंत्रण था। छत्तीसगढ़ी तो उनकी मातृभाषा थी ही। मूर्तिकला और चित्रकारी भी उनके प्रिय विषय थे। चमसूर से राजिम आते ही उनकी गतिशीलता में वृद्धि होने लगी। राजिम के साहित्य-रसिकों में वे शीघ्र ही विख्यात हो गए। राजिम में उनके द्वारा स्थापित कवि-समाज इसका प्रमाण है। राजिम उन दिनों साहित्यकारों का गढ़ था। 'सरस्वती' जैसी पत्रिका में स्थान पाने वाले अनेक साहित्यकार वहाँ रहते थे। ऐसे विद्वानों की संगति में शर्मा जी की साहित्यिक प्रतिभा और भी परिष्कृत-परिमार्जित हुई। कवि-समाज वास्तव में एक वाचनालय था। देश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं की यहाँ उपलब्धता थी।

वह दौर देश की ग़ुलामी का था। पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों से देश में स्वतंत्रता के लिए किये जा रहे कार्यों और कार्यक्रमों से सुंदरलाल अवगत होते रहे। शिक्षित व्यक्ति ही स्वाधीनता का अर्थ समझ सकता है। फिर वे संवेदनशील साहित्यकार भी थे। स्वतंत्रता का मर्म वे समझ गए थे। रायपुर में पं. माधवराव सप्रे सरीखे पत्रकार, साहित्यकार और सेनानी मौजूद थे, जिनसे गोरी हुकूमत थर्राती थी। राजिम में ही पं. नारायण राव मेघावाले, नत्थूजी जगताप, बाबू छोटेलाल श्रीवास्तव जैसे आज़ादी के दीवाने थे ही। इन सभी का साथ सुंदरलाल जी को भाने लगा। वे भी स्वातंत्र्य-समर में

कूद पड़े और काँग्रेस के अधिवेशनों में सम्मिलित होने लगे। यह उल्लेखनीय है कि काँग्रेस में सेवादल के गठन से पूर्व ही शर्मा जी इसी नाम का संगठन स्थापित करके काँग्रेस के कार्यक्रमों का प्रचार करने लगे थे।

गाँधीजी के सक्रिय होने से पूर्व लोकमान्य तिलक सर्वमान्य नेता थे। उनके निधन के बाद स्वतंत्रता-संग्राम का संचालन-सूत्र गाँधी जी के हाथों में आ गया। तिलक गर्म विचारों के थे। ईंट का जवाब पत्थर से देने में उन्हें परहेज़ नहीं था, किंतु महात्मा जी ने अहिंसा, असहयोग, बहिष्कार, अनशन और सत्याग्रह जैसे सर्वथा नये आयुधों का परिचय पहली बार भारतीय जनता से करवाया। इन हथियारों की पहले तो हर किसी ने खिल्ली उड़ाई। बाद में ये कितने अचूक और विध्वंसकारी सिद्ध होते रहे, यह सारा विश्व जानता है। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद भारत-भ्रमण के दौरान गाँधीजी ने यह पाया कि देश की जनता में वह चेतना नहीं आई है, जिससे स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त हो। राजा, महाराजा, और ज़मींदारों की आज्ञाओं के पालन में भारतीय जन तल्लीन थे। 'को नृप होई हमें का हानी' की स्थिति थी। इस जड़त्व को एकाएक नहीं तोड़ा जा सकता था। सन् 1920 सही मायने में भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का निर्णायक मोड़ था। असहयोग की देशव्यापी नीति से ब्रिटिश-सत्ता हतप्रभ हो गई थी।

वैसे 1903 से ही वे काँग्रेस के सदस्य बन गए थे। विशेष सक्रियता 1907 के सूरत-अधिवेशन के बाद उनमें आई। स्वदेशी के व्रत ने उन्हें बर्बादी के कगार पर ला खड़ा किया। 'सन्मित्र-मण्डल' के तत्वावधान में मेघावाले जी के साथ 'स्वदेशी वस्तुओं' की दुकानें उन्होंने शुरू कीं और ऐसा घाटा उन्हें लगा कि उनकी मालगुजारी के गाँव बिकने लगे। हज़ारों रुपयों के क़र्ज़ का बोझ हो गया, मामला अदालत तक पहुँच गया। 'डिक्री' हो गई। दुर्योग, जिस समय डिक्री-आदेश शर्मा जी के पास पहुँचा, उनके आँगन में उनके युवा पुत्र की अंतिम यात्रा की तैयारियाँ हो रही थीं।

स्वाधीनता-संग्राम के युग में छत्तीसगढ़ महतारी ने दो ऐसे नर रत्न दिये, जो राजनीति में रह कर भी राजनीतिज्ञ न हो सके। एक थे पं. सुंदरलाल शर्मा और दूसरे त्यागमूर्ति डॉ. प्यारेलाल सिंह। दोनों अपने सिद्धांतों पर आजन्म अटल रहे। वे सत्ता के चूहे-बिल्ली की दौड़ में कभी शामिल नहीं हुए। दोनों ने ही समाज के दमित-शोषित-पीड़ित वर्ग की व्यथा को अपनाया और उन्हीं के कल्याण के लिए संघर्ष करते रहे। छत्तीसगढ़ में गाँधी जी के पूर्व से ही अछूतोद्धार का कार्य पं. सुंदरलाल शर्मा ने प्रारंभ कर दिया था। उस युग में यह बड़ा ही क्रांतिकारी और सनसनीखेज कार्य था। छत्तीसगढ़

में और भी बड़े नेता थे, पर समाज की इस रुग्णता पर प्रहार करने का साहस वे न कर सके। राजिम को छत्तीसगढ़ का प्रयाग कहा जाता है। राजीवलोचन मंदिर में हरिजनों का प्रवेश उस काल में निषिद्ध था। यह विडंगना ही थी कि धर्माचरण का लबादा ओढ़े लोग ही दुप्पटे के भीतर से हरिजनों के मंदिर-प्रवेश का विरोध कर रहे थे। उनका विरोध शर्मा जी के संकल्प के समक्ष कैसे टिकता। एक ओर तो गाँधी जी के कार्यक्रमों में निष्ठा दिखाते, पर जब कुछ कर गुज़रने का मौक़ा आता, तो निष्ठा का स्थान बेशर्मी के साथ पीठ ले लेती। सतनामियों का सामूहिक यज्ञोपवीत कराने के दुस्साहस भरे कार्यों की कीमत भी उन्हें चुकानी पड़ी थी। दंभी समाज ने उन्हें बहिष्कृत कर दिया। वे अनेक अपमानजनक अलंकारों से लाद दिये गए। एक सच्चे ब्राह्मण की तरह वे अपने सिद्धांतों और संकल्पों पर अटल रहे। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि सत्य अकेला भले ही हो, पर अन्तत: वही विजेता होता है। पंडित जी ने अपना बहुत-सा समय पढ़ने और लिखने को समर्पित किया था। कविता, नाटक और उपन्यास आदि बाईस ग्रंथों का प्रणयन मामूली बात नहीं होती। उनकी रचनाओं में धार्मिक आख्यान मुख्य विषय हैं। सीता-परिणय (नाटक), प्रहलाद-चरित्र (नाटक) पार्वती-परिणय (नाटक), ध्रुव-चरित्र-आख्यान (संगीत-आख्यान), रघुराज-गुण-कीर्तन, करुणा-पच्चीसी, छत्तीसगढ़ी दानलीला, कंस-वध, रामायण बालकांड, श्री कृष्ण-जन्म-आख्यान, प्रलाप पदावली, सतनामी-भजन-माला, सद्गुरुवाणी (सभी पद्य-संग्रह) ये सभी धार्मिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। यह जान लेना भी आवश्यक है कि 1898से उनकी कविताएँ 'रसिक-मित्र' में स्थान पाने लगी थीं। 'राजिम-क्षेत्र-माहात्म्य' संवत् 1951 में लिखा गया काव्य-संग्रह है। उनका लेखन-कार्य 1912 तक निरंतर जारी रहा। सन् 1896 में जब 'राजिम-कवि-समाज' गठित हुआ और सुंदरलाल जी को उसका मंत्री बनाया गया, उस समय वे मात्र 17 वर्ष के थे, किंतु, उनकी संगति उस समय के विख्यात साहित्यकारों-विश्वनाथ प्रसाद दुबे, ठा.दामोदर सिंह वर्मा, ठा. सूर्योदय सिंह वर्मा, क्षेमू प्रसाद शर्मा, गजाधर प्रसाद पौराणिक, प्यारेलाल दीक्षित और ठा. भोला सिंह बघेल के साथ थी। विश्वनाथ दुबे ने 1903 में एडवर्ड महाकाव्य की रचना की थी। शर्माजी ने इस ग्रंथ की प्रूफ़ रीडिंग की थी।

शर्मा जी की इन धार्मिक पृष्ठभूमि वाली रचनाओं का प्रभाव उन पर भी निश्चित रूप से हुआ होगा। कबीर की रचनाओं में मानव-वादी संदेश हैं, आडंबरों और सामाजिक विद्रूपताओं पर करारे प्रहार हैं, वहीं गुरु घासीदास ने अपने उपदेशों में मानव-मानव एक समान का जो संदेश दिया, निश्चित रूप से पंडित जी के मर्म में गहरे तक पैठ गया

और यही वजह है कि वे समाज में अस्पृश्य कहे जाने वालों के साथ खड़े हो कर विडंबनाओं को विखंडित करने लगे। समाज में ऐसी क्रांति लाने वालों में नैतिकता, धर्म-अध्यात्म की समझ, दृढ़ संकल्प, उत्तम चरित्र और हठधर्मिता अनिवार्य शर्त होती है। क्रोधी भी वे थे। मैं तो उन्हें आधुनिक परशुराम कहता हूँ। अपने संकल्पों की राह में वे अपने परमप्रिय व्यक्तियों का भी बाधक बनना सहन नहीं करते थे। पंडित जी की माता जी और महंत लक्ष्मीनारायण दास की माता जी ने 'महाप्रसाद' बदा था। महंतजी पर पंडितजी का अनुजवत् स्नेह था। रायपुर प्रवास के दिनों में वे जैतू साव मठ के अतिथि होते थे। कतिपय मुद्दों पर दोनों के मध्य मतभेद इतने बढ़ गए कि शर्माजी ने मठ की सीढ़ियाँ नहीं चढ़ने की प्रतिज्ञा कर ली, तथापि महंत जी के प्रति उनका स्नेह यथावत् बना ही रहा। बदना-बदने की प्रथा छत्तीसगढ़ में बड़ी पुरानी है। यह ऐसा संबंध होता था कि पीढ़ियों तक निभाया जाता था। रक्त-संबंध से ज्यादा महत्त्व का यह माना जाता था, पर अब वह परिपाटी लुप्त हो चुकी है।

वे चिंतनशील व्यक्ति थे। उनकी सोच स्पष्ट थी कि समाज के दलित वर्ग को भी सवर्णों की भाँति सामाजिक और धार्मिक अधिकार हैं। जिन्हें ईश्वर ने बनाया है, उसे प्राकृतिक अधिकारों से वंचित करने का अधिकार किसी अन्य मानव को नहीं हो सकता। जल-ज़मीन की ही तरह मंदिरों पर भी सभी का अधिकार है। किसी को जाति के आधार पर कुएँ से पानी लेने, राह चलने या मंदिर-प्रवेश करने से रोकना परमात्मा के प्रति अपराध है। इन्हीं विचारों से प्रेरित युवा सुंदरलाल ने निर्भयतापूर्वक अंधविश्वासों, कुरीतियों और रूढ़ियों पर प्रहार करना शुरू कर दिया। 1918 में सतनामियों को सामूहिक रूप से यज्ञोपवीत धारण करवाने का कार्यक्रम तो बेहद सनसनीखेज था। मद्य-निषेध और मांसाहार के खिलाफ़ उनका आंदोलन भी अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में पूर्णतः सफल रहा। राजीवलोचन मंदिर में कहारों का प्रवेश भी लगभग इसी समय करवाया गया और इसी वर्ष मुंगेली में सतनामी समाज का विराट् सम्मेलन आयोजित करवा कर समाज में व्याप्त वैषम्य को खंड-खंड कर दिया। जब समाज में कुछ नया घटित होने लगता है, तब बुद्धिजीवी-वर्ग भी उसमें स्वप्रेरित भाग लेने लगता है। 1924 में रायपुर में सतनामी आश्रम की स्थापना की गई। इस कार्य में ठा. प्यारेलाल सिंह और प्रखर आर्य समाजी दुर्ग के दाऊ घनश्याम सिंह गुप्त ने पंडित जी के कंधे से कंधा मिला कर साथ दिया। अगले ही वर्ष राजिम के रामचंद्र मंदिर में हरिजनों को प्रवेश करवाया गया। ठा. प्यारेलाल सिंह और छबिलाल चौबे भी उनके साथ सक्रिय थे।

गाँधी जी को छत्तीसगढ़ लाने का श्रेय भी पंडित जी को है। 1920 में कंडेल में नहर-सत्याग्रह प्रारंभ हुआ। बाबू छोटेलाल श्रीवास्तव, पं. मेघावाले के साथ शर्मा जी भी किसानों और आदिवासियों को संगठित और संयत करने के कार्य में संलग्न थे। वनवासी किसानों पर भरी बरसात में नहर से पानी चोरी करने का हास्यास्पद आरोप अधिकारियों ने थोप कर ज़ुर्माना-नोटिस थमा दिया गया था। ऐसे अन्याय का विरोध जो होना ही था, हुआ और बड़े पैमाने पर हुआ। किसानों के कुर्क मवेशी हाट-बाज़ार में नहीं बिक सके। किसानों के साथ आम जनता को भी आंदोलन से जोड़ लिया गया था। इस बीच दो दिसंबर को महात्मा जी को नगरी लाने के उद्देश्य से शर्माजी कलकत्ता रवाना हुए और 20 को रायपुर आ गए। गाँधी जी के आगमन की सूचना मात्र से ही अधिकारियों के हाथ-पाँव फूल गए। किसानों पर थोपे आरोप और कुर्क मवेशियाँ वापस कर दी गईं। यदि इन त्रिमूर्तियों का नेतृत्व नगरी के आदिवासी कृषकों को नहीं मिलता, तो यह आंदोलन ही नहीं होता और अन्याय-अत्याचारों के किताब में कुछ पन्ने और जुड़ जाते। इस प्रसंग में यह उल्लेख करना ज़रूरी है कि पंडित जी अपने समय के प्रगतिशील कृषक थे। आधुनिक कृषि-कार्य के लिए वे सरकार द्वारा सन् 1914 में सम्मानित किये गए थे। 1915 में उन्होने किसान-सभा का सफलतापूर्वक आयोजन करके किसानों को कर्ज़ से निज़ात दिलाने के लिए 'ऋण-मुक्ति सहायता-फ़ण्ड' की स्थापना भी की थी। शर्माजी कृषि में आधुनिक तकनीक के उपयोग के पक्षधर थे। किसान तो हर युग में छला गया। कभी अल्प-वृष्टि या उत्पादन का सही मूल्य न मिलना किसानों की नियति रही है। अन्न-दाता ही दयनीय रहा, इस दुख को कोई संवदेनशील किसान ही समझ सकता है।

1922 में वनवासियों ने जंगल-सत्याग्रह छेड़ दिया। प्रखर आदिवासी नेता श्यामलाल सोम इस आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे। अहमदाबाद-अधिवेशन से लौटते ही शर्माजी को ज्ञात हुआ कि श्यामलाल सोम और 33 सत्याग्रहियों को गिरफ़्तार कर लिया गया है। शर्माजी, पं. मेघावाले और बाबू छोटेलाल जी ने आंदोलन का सूत्र थाम लिया। आखिरकार मई माह में पंडित जी को गिरफ़्तार करके एक साल के लिए रायपुर जेल भेज दिया गया।

1923 में कौंसिल प्रवेश के मुद्दे पर काँग्रेस के दिग्गज नेताओं ने स्वराज दल का गठन कर लिया था। मोतीलाल नेहरू, सरदार पटेल, देशबंधु चित्तरंजन दास कौंसिल-प्रवेश के हिमायती थे। छत्तीसगढ़ में पं.रविशंकर शुक्ल, ई. राघवेंद्र राव और बैरिस्टर

छेदीलाल भी स्वराज पार्टी में शामिल हो गए, जबकि पं. शर्मा, ठाकुर प्यारेलाल सिंह, मेघावाले जी गाँधी के आदेश को मानने वालों में से थे। कौंसिल प्रवेश करने वालों पर 'जेल-पत्रिका' में एक व्यंग्य-कविता शर्माजी ने लिखी थी-

"देख-देख खुश हो रहे कौंसिल का प्रस्ताव
प्लीडर-लीडर लोग जो दें मूछों पर ताव
मज़ा है यार उड़ेंगे गुलछर्रे
जेल जाल का डर नहीं चमकेगा रुजगार
कूद नाच नेता बड़े, बनने से दरकार
भला हो दस करोड़ बरस जीवें
पड़े जेल सड़ते रहें, नेता लाख हजार
कौंसिल की कुर्सी मिली कि होगी बेड़ा पार।"

कैसा करारा प्रहार है ! बिना किसी का नाम लिये संकेतों से सारी स्थिति को निर्वस्त्र कर सकने में उनकी महारत का यह छोटा-सा नमूना है।

22 नवंबर, 1933 को गाँधीजी का 'हरिजन-दौरा' हुआ। हरिजनोद्धार के लिए छत्तीसगढ़ का चयन महात्मा जी ने किया था। यहाँ आने के बाद दलितोद्धार के लिए किए गए शर्माजी के कार्यों को जानकर वे बड़े प्रसन्न और प्रभावित हुए, कहा- "हरिजनों के उद्धार-विषयक कार्यों में पं.सुंदरलाल शर्मा राजिम-वाले मुझसे दो वर्ष बड़े हैं।" छत्तीसगढ़ में हरिजनों के उद्धार का कार्य तेजी से चल पड़ा। चंदखुरी के दाउ अनंत राम बर्छिहा बड़े मनोयोग से इस कार्य में संलग्न थे। हरिजन बस्तियों में स्वच्छता, नाई और धोबी का कार्य उन्होंने अपने हाथों में लिया। भला समाज उनके कार्यों को कैसे बर्दाश्त करता ? बर्छिहाजी को जाति से बहिष्कृत तो कर ही दिया, 'पाँचों-पवनी' बन्द हो गई। 'पाँच-पवनी' से वंचित होना कितना दुखदायी होता है, यह आज की पीढ़ी नहीं जान सकती। शर्माजी, ठाकुर साहब और डॉ. खूबचंद बघेल अछूतोद्धार के कार्यक्रम को प्रचार करते चंदखुरी पहुँचे। बर्छिहाजी की दशा देखकर उनका हृदय रो पड़ा। डॉ. बघेल ने इस घटना से प्रेरित होकर 'ऊँच-नीच' नाटक लिखा और प्रथम मंचन भी चंदखुरी में हुआ। नाटक के मंचन का ग्रामवासियों के मन पर व्यापक असर हुआ, बर्छिहा जी ससम्मान पुनः समाज में सम्मिलित कर लिये गए।

पं. शर्मा काँग्रेस के लिए कितने अहम थे, यह 'भारत में अँग्रेज़ी राज' के लेखक सुंदरलाल के पत्र से स्पष्ट हो जाता है-

असहयोग आश्रम,
नागपुर, 2-12-1925

श्रद्धेय भाई सुंदरलाल जी शर्मा,

बहुत दिनों बाद आपको लिख रहा हूँ। 12 दिसंबर को 8 बजे वर्किंग कमेटी की बैठक है। नया सभापति, नई कार्यकारिणी चुनना है। हमारे सामने इस समय 5 रास्ते हो सकते हैं। एक यह कि स्वराज्य दल वालों की और असहयोगियों की मिली-जुली वर्किंग कमेटी बनाई जाए और दूसरा यह कि काँग्रेस कमेटी उन्हीं के सुपुर्द कर दी जाए। तीसरा यह कि किन्हीं इन्डिपेंडेंट पार्टी को कमेटी सुपुर्द कर दी जाए, जो काम सब वही कर लें, किन्तु स्वराज्य पार्टी से अलग रहें। चौथा यह कि पक्के असहयोगियों की वर्किंग कमेटी बनाई जावे, जो कौंसिल के कार्य बिलकुल स्वराज्य पार्टी के हाथ छोड़ दें। उससे अपने आपको तटस्थ रख कर केवल इस तरह का विधायक कार्यक्रम साल भर करती रहे, जो असहयोग के सिद्धांतों के विरुद्ध न हो, जैसे- चरखे, खादी का काम, शराब का विरोध, अछूताद्धार, ग्राम-संगठन इत्यादि। मुझे इन चारों रास्तों मे अंतिम रास्ता ही शानदार एवं ईमानदारी का मालूम होता है कि प्रांतीय कमेटी चाहे तो ऐसा कर सकती है। इसी के अनुसार सभापति का चुनाव होगा। यानि एक ऐसा आदमी जो अनेक सिद्धांतों का पक्का हो। मेरी नज़र खांडेकर जी के बाद यदि किसी पर पड़ती है, तो आप पर या नरसिंहपुर के गयादत्त शुक्ल पर। केवल मुझे जो कुछ सूझ रहा है, आपके सामने रख देना चाहता हूँ। कृपया आप भी इस विषय पर खूब विचार कर लीजिए। 11 तारीख को किसी दिन की गाड़ी से ज़रूर आइये, ताकि वर्किंग कमेटी की बैठक से पहले आपसे बातचीत हो सके।

उत्तराभिलाषी
आपका भाई सुंदरलाल

किंतु वे राजनीति का हिस्सा नहीं बने और रचनात्मक कार्यों में ही अपनी ऊर्जा और सक्रियता रखी। यदि वे चाहते, तो ऐसे मौक़े का लाभ उठाते, असेंबली में बैठते, मंत्री भी बनते और बड़े नेताओं की गणेश-परिक्रमा करते। उनके लिए राजनीति से ऊँचा था समाज, समाज-सेवा और समाज-सुधार। वे अपने अभियान में सौ प्रतिशत सफल हुए।

28 दिसंबर 1940 को उन्होंने अंतिम अभियान भी प्रारंभ कर दिया। महज़ 59 वर्ष की आयु में उन्होंने अनेक सोपान रच दिये। यदि वे 8-10 वर्ष और हमारे बीच रह जाते, तो राजनैतिक परिदृश्य भी कुछ बदला-सा ही होता।

❖

स्वतंत्रता-सेनानी पं. सुंदरलाल शर्मा की साहित्य-साधना

■ डॉ. सविता मिश्रा

छत्तीसगढ़ी गाँधी के नाम से विख्यात, महान स्वतंत्रता-संग्राम-सेनानी पं. सुंदरलाल एक युग-प्रवर्तक थे। देशभक्त, समाज-सुधारक तो थे ही, उत्कृष्ट कवि तथा साहित्यकार भी थे।

जैसे निम्न पंक्तियों में उन्होने अपने व्यक्तिगत मनोभाव तथा आकांक्षा को प्रस्तुत किया है-

कबहूं सतसंग में रंग रहैं, कबहूं उर आनंद ते बिहरें।
कबहूं कवि सुंदर काव्य करैं, कबहूं उपदेशन को उबरैं॥
कबहूं पर के उपकारन के, निवछावर ये तन प्राण करै।
हमरे यह जीवन या विधितें, कबधौं करुणाकर पार करें॥

छत्तीसगढ़ के लाखों उपेक्षित हरिजनों की ग़रीबी और दारिद्रय से पं. शर्मा का कवि-हृदय करुणा से भर चुका था। कवि ने अपने "पतित प्रार्थना" नामक कविता में लिखा है-

भैयों। पतितों का उद्धार सदा करते रहो जी।
बिछड़े, पतन हुए लोगों को ऊपर लेहु उठाय॥
प्रेम समेत इन्हें अपनाकर छाती लेहु लगाय।
ये भी धर्म सनातन ही के हैं भैय्या एक अंग
इनको फेंक मूढ़ता के वश मत हो जाना पंगु॥

उन्होने अपनी इस वाणी को मूर्त रूप देने के लिए हरिजनों को छाती से लगा लिया। तब इन्हें कट्टरपंथी हिंदूओं ने बहिष्कृत कर दिया, जिसकी उन्होने परवाह नहीं की और लिखा है-

भले बदनाम करैं बदलोग, अरे बरबाद चहै होय जावो
देश के हेव से देश निकाल दै, हर्ज नहीं कछु, हांसत जावो।

पं. सुंदरलाल शर्मा ने सन् 1906 में 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' का सार्वजनिक प्रकाशन कर के छत्तीसगढ़ी को भाषा का रूप देने का सर्वप्रथम प्रयास किया, जिसके

कारण इन्हें छत्तीसगढ़ी का आदि कवि कहा जाता है। यह कृष्ण-भक्ति रचना है।

चांदी के सूता झमकाये। गोदना ठांव ठांव गोदवाये
दुलरी तिलरी कटवा मौहें। औ कदमाही सूर्य सोहैं
पुतरी अउर जुगजुगी माला। रूपस मुंगिया पोत विशाला
हीरा लाल जड़ाये मुंदरी। सब झन चक चक पहिरे अंगरी
पहिरे परछहा देवराही। छिनी अंगुरिया अउ अंगुठाही
खोटिला टिकली दार बिराजै, खिनवा लुरकी कानन राजै
तरवर खाते झुमका झुले, देखत डउकन के दिल भूलै

'दानलीला' के अंतिम पृष्ठ पर लिखा था कि यह किताब छत्तीसगढ़ प्रांत के सभी किताब दुकानों में उपलब्ध है। अर्थात् उनकी प्रारंभ से ही यह सोच थी कि छत्तीसगढ़वासियों का अपना एक छोटा-सा प्रांत हो।

इन्होंने ग्रामीण परिवेश, संस्कृति आदि को लेकर प्रसिद्ध 'छत्तीसगढ़ी रामायण' की रचना की है, जिसके कारण इन्हें देश के महान कवि की उपाधि मिली थी। छत्तीसगढ़ी रामायण अप्रकाशित है। आज पहली बार उनकी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं। रामायण का प्रारंभ मंगलाचरण से होता है

दोहा -

जनम देवेयो जगत के, जगपति लाकर जोर,
बेर बेर विनती करो, होव सहायक मोर
रामचंद्र भगवान के कहिहौं कथा बनाय
समुझि सुनिहौ चिन्तजगाय

मंगलाचरण के पश्चात् पंच गोठ-

घर के भीतर एक दिन बइठे दसरथराय
न्हाय न्हाय वीर पूजा करत, रहिन हृदय हरषाय

राजा दशरथ के घर पुत्र जन्म नहीं होने से वे चिंतित हैं, उसे कवि ने लिखा है-

मन मन गुनत करत दुख राजा, कब बजिहैं घर सोहर बाजा
कवधौं अइसन साइत आहै, कब अतका अस साध बुता है॥

राजा दशरथ ने गुरु वशिष्ठ के पैर में गिरकर अपनी व्यथा सुनाई। मुनि ने कहा-राजन् उठो, तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी-

उमंगत भूप हाथ में झोंकिन, गदगद भइन नयन जल रोकिन
फिर उठके मुनि मनके पगलागिन, कौशल्यादि सबो बड़भागिन
मुनि महराज धन्य करि दाया, आज करेव परिपूरण माया
जब ले जग में जिनगी धरबो, ये उपकार न जियत बिसरबो ॥

गुरु कृपा से राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघन का जन्म होता है। बालकांड से पं. सुंदरलाल शर्मा की वर्णन-शैली ग्रामीण संस्कृति से अभिप्रेरित है। बाल्यावस्था का वर्णन है-

असने बालचरित अनुसरहीं, गम्मत गढ़न गढ़न के करही
नाचत कूदत दउरत फुदकत, गिर गिर उठत हंसत कभू उनगत्
ढलगत रोवत सुसकत, जावैं आवैं तब सब दउर मनावैं
धनसो जीव राम झरियाइन झराइन पोंछिन उठ्ठाईन

इसके उपरांत गुरुकुल का चित्रण है-

कुकरा के बासत उठिन सनतेच लक्ष्मण लाल
गरूजे आगूं जगतपति जागिन राम कृपाल
कुल्ला करिन नयन मुंह धोइन, टहलिन दिशा गइन श्रम खोइन
चिक्कन हाथ पांव मटियाइन, दतवन कोइला घसिन नहाइन ॥

इस तरह से पं. सुंदरलाल शर्मा अद्वितीय, बहुआयामी विलक्षण प्रतिभा के धनी, देशभक्त, समाज-सुधारक, शिल्पकार, चित्रकार और नाटककार थे।

❖

छत्तीसगढ़ी काव्य का मंगलाचरण

■ डॉ. बलदेव

सृजन और संहार परमब्रह्म के नित्य-धर्म हैं, नित्य के लिए, नित्य लीला है, लीला अर्थात् विलास। कृष्ण का चरित्र लीलामय है, उनकी नित्य-लीलाओं में दानलीला भी एक है, जो मध्यकाल में प्रचलित हुई थी। श्रीमद्भागवत् पुराण में दानलीला का कहीं उल्लेख नहीं हुआ है। पुराण माने प्राचीन कथा, जिसमें इतिहास और साहित्य का अद्भुत समावेश होता है। सुन्दर कवि विरचित 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' के आस्वाद के पूर्व लीला के रहस्य और परम्परा को समझ लेना बेहद ज़रूरी है।

दानलीला पन्द्रहवीं-सोलहवीं सदी अर्थात् भक्तिकालीन आन्दोलन की उपज है। इसका लम्बा इतिहास है। श्रीमद्भागवत पुराण श्री हरि विष्णु का साक्षात् विग्रह है। गोपाल कृष्ण उन्हीं के अवतार हैं। लीलाधारी पुरुषोत्तम कृष्ण ने भागवत-धर्म की स्थापना की थी। भक्तों के बीच कई बार विराट् रूप के प्रदर्शन के पीछे यही रहस्य है। श्री विष्णु सकल सृष्टि के आदि, अनन्त और अन्तिम सत्य माने गए हैं। कालान्तर में बौद्ध जैन धर्मों के उदय, बाहरी आक्रमण और इस्लाम के शक्तिशाली प्रचारतंत्र के कारण यह शाश्वत धर्म लुप्त होने जा रहा था, तभी दक्षिण में आलवार संतों ने भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात किया। अन्दाल नाम की भक्ति न कृष्ण को अपन आराध्यदेव पति ही मानती थी, उसने कृष्ण के ही लीला-गायन में अपना जीवन समर्पित किया। रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य और वल्लभाचार्य के साथ उक्त भक्ति -आन्दोलन दक्षिण से उत्तर भारत आया। रामानंद और महाप्रभु चैतन्य ने इसे मज़बूत किया। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सगुणोपासना की दार्शनिक व्याख्या हेतु विशिष्टाद्वैत का प्रवर्तन किया और अणु भाष्य लिखा, दूसरी ओर लोकपक्ष में उन्होंने श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध की व्याख्या की, और श्रीनाथ मंदिर के निर्माण के साथ ही साथ कृष्ण की पूजा-अर्चना शुरू कराई। उनके पुष्टि मार्गी शिष्यों (अष्टछाप के कवियों) ने दशम स्कन्ध के आधार पर व्रजभाषा में लाखों पद लिखें, श्रीनाथ मंदिर में इन पदों का गायन निरन्तर होता रहा है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य के मत से कृष्ण गोपियों के लिए साक्षात् परमब्रह्म हैं, राधा उनकी आद्य शक्ति है। गोपियाँ जीव-समूह हैं, जो भगवान के अनुग्रह से नित्य-लीला में प्रवेश पा सकती हैं। गौड़ीय सम्प्रदाय के अनुसार राधा और कृष्ण एक ही हैं।

निम्बार्काचार्य ने इस मत से भी पहले राधा की पूर्ण प्रतिष्ठा कर के कृष्ण को सकल सृष्टि का कारण मान लिया था। उनका स्पष्ट मत था- "नान्यगतिः कृष्णपदारविन्दात्"- हरिशरण को छोड़ जीव की अन्यत्र दूसरी गति नहीं। धीरे-धीरे भक्ति के मुख्य तत्व के रूप में 'प्रेम-पूजा' को प्रतिष्ठा मिली। श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के उखल-बन्धन, यमलार्जुन, कालिय-दमन, गोवर्धन-लीला, चीरहरण, वेणुवादन, गोचारण, रासलीला जैसे प्रसंगों से उत्प्रेरित होकर मानलीला और दानलीला जैसी नई कथाओं का सृजन किया गया, जो पुष्टिमार्गी कवियों की निजी कल्पना थी, नवीन उद्भावना थी, ये कथाएँ संभावित और स्वाभाविक भी हैं। एक प्रकार से वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित भगवान् कृष्ण के लोकरक्षक रूप की अपेक्षा लोकरंजक रूप की उपासना-पद्धति के कारण इसे लोक में पूर्ण प्रतिष्ठा मिली। दानलीला और मानलीला के संकेत वेणुगीत, गोचारण, और रास प्रसंगों में खोज लेना कोई असंभव काम नहीं। श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्ध में रासलीला-विषयक दो श्लोक इस संदर्भ में द्दष्टव्य हैं-

तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः।
स्त्री रत्नैन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्ध बाहुभिः ॥ 2
रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्येद्वयोर्द्वयोः ॥ 3

सम्पूर्ण योगों के स्वामी भगवान कृष्ण दो-दो गोपियों के बीच प्रकट हो गए। एक गोपी एक कृष्ण के क्रम में सभी गोपियाँ ऐसा अनुभव करने लगीं कि उनके प्रिय तो उनके ही पास हैं -

कृत्वा तावन्त मात्मानं यावतीर्गोपयोषितः।
रेमे स भगवांस्ताभिरात्माऽपि लीलया ॥20॥

महारास-33वाँ अध्याय

यद्यपि भगवान् को अपने अतिरिक्त और किसी की आवश्यकता नहीं है, फिर भी उन्होंने जितनी गोपियाँ थी, उतने ही रूप धारण किए और खेल ही खेल में उनके साथ इस प्रकार विहार किया। यह उनका अनुग्रह था, आगे परीक्षित की शंका है, लोकरक्षक यदुनन्दन ने पर-दारा का स्पर्श किस प्रकार किया होगा। शुकदेव जी का समाधान है-

न मय्याविशधिसां कामः कायाय कल्पते
भार्जिता क्वाथिता धानाः प्रायोबीजनेष्यते

'जिसकी बुद्धि मेरे में लीन हो चुकी है, उसकी कामनाएँ संसार के भोग्य हेतु नहीं होतीं भूँज दिये जाने के बाद बीज अंकुरित नहीं हो सकते। गौड़ीय सम्प्रदाय के रूप गोस्वामी ने गोमतीयमंत्र में इसे लौकिक काम से मिलता-जुलता आनंद बताया है।' "प्रेमेव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्।" तब भी यह लौकिक काम से भिन्न है। जीव गोस्वामी ने स्पष्ट कहा है- कृष्ण के प्रति रति भाव विशुद्ध कोटि का प्रेम है। इसी भाव को लेकर शायद वल्लभाचार्य ने रति भाव और रूप-माधुरी की व्याख्या करके भगवान् के लोकरंजक रूप को ही काव्य का उपजीव्य बनाया। इस मत की पुष्टि उनके शिष्य नंददास जी की इन पंक्तियों से होती है-

1. जो ऐसो मरजाद मेटि मोहन को ध्यावै
काहे न परमानंद प्रेम पदवी को पावै

2. कृष्णा तुष्टि के कर्म करै जो आन प्रकारा
फल विभचार न होई, होई सुख परम अपारा

पहले ही बताया जा चुका है कि दानलीला छत्तीसगढ़ी काव्य का मंगलाचरण है। इसके रसपान के लिए महाभाव की लीला का रहस्य समझना ज़रूरी है, अन्यथा आज के बौद्धिक समाज में इस महत्त्वपूर्ण कृति के अर्थ का अनर्थ लगा लेना कोई बड़ी बात नहीं।

अब हम यहाँ दानलीला की परम्परा की संक्षेप में चर्चा करना चाहेंगे, ताकि छत्तीसगढ़ी दानलीला की पृष्ठभूमि को समझा जा सके।

सूरदास जी ने श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर सूरसागर की रचना की है। इसमें ब्रजलीला के अन्तर्गत दानलीला के करीब तीस पद मिलते हैं। इस दानलीला में दही बेचने जा रही गोपिकाओं को कृष्ण अपने सखाओं सहित मार्ग में रोक लेते हैं छीना-झपटी में इनके बीच विवाद बढ़ जाता है, अंत में कृष्ण के तर्क के सामने गोपियाँ हार जाती हैं। उनका तर्क है, कंस की क्या बात, हम तो तीनों लोकों के राजा हैं, हम किसी के बेटे नहीं है, हम आदि और अजन्मा हैं। भक्तों के उद्धार के लिए ही हम इस धरा-धाम में आए हैं। यह बात सुनकर गोपियाँ प्रसन्न हो जाती हैं, और कृष्ण के अनुग्रह को समझकर मनमाना दूध-दही का दान करती हैं। यहाँ कृष्ण और गोपियों के बीच की नोक-झोंक बड़ी ही तार्किक और मनोरंजक है। कुंभनदास जी द्वारा लिखित और बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में प्रकाशित दानलीला, मूलत: एक लम्बा पद है, जिसमें माधुर्य-भाव का सुन्दर निरूपण हुआ है। सन् 1883 में मुंशी कन्हैया

लाल जी के सम्पादन में नन्ददास लिखित दानलीला का प्रकाशन मथुरा से हुआ था, इसमें कुल चौदह पद हैं। प्रारंभिक पद यहाँ दिया जाता है-

अहो प्यारी वृन्दा विपिन सुहावनी
अरु बंशी वट की छांह हो
(श्री) राधा दधि ले निकसी
श्री कृष्ण रोके राह हो
वृषभान लड़ैती दान दे

नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज-रिपोर्ट, सन् 1902 के अनुसार परमानंद दास, ध्रुव दास प्रियादास, राज्य प्रसाद, मनचित दास आदि भक्त कवियों ने भी दानलीला लिखी थी। ध्रुवदास जी कृत 'दानलीला' तो बहुत ही लोकप्रिय रही। इसी समय के लगभग माधवदास की 'दान-माधुरी', अनन्य अली की 'दान-विनोद-लीला' भी लिखी गई थी। गुजरात के नरसी मेहता की दानलीला का प्रचार आज भी है। रीतिकाल में वल्लभाचार्य सम्प्रदाय में दीक्षित हरिराय की लिखी दानलीला का भी ब्रजमण्डल में कम प्रचार नहीं है। निम्बार्काचार्य के सम्प्रदाय में दीक्षित घनानन्द कृत दान-घटा काव्य सौष्ठव की दृष्टि से सूरकृत दान-लीला से बढ़-चढ़कर है। शुक सम्प्रदाय के चरणदास कृत दान-लीला का उनके सम्प्रदाय में आज भी आदर है। आधुनिक युग में भारतेन्दु प्रणीत 'दानलीला' का हिन्दी प्रदेश में एक समय बड़ा प्रचार था। 'सुन्दर' कवि की दानलीला के आगे 'छत्तीसगढ़ी' विशेषण से अनुमान लगाया जा सकता है, कवि परम्परागत दानलीलाओं से कुछ तो परिचित था ही।

ब्रजभाषा की यह समृद्ध परम्परा छत्तीसगढ़ में कैसे पहुँची, यह दिलचस्प प्रश्न हो सकता है। मेरे विचार से रतनपुर राज्य में ब्रजभाषा के कई बड़े कवि हो चुके हैं, जो रासलीला की परम्परा से अनजान ही रहे होंगे। नरियरा गाँव (अब जाँजगीर जिला) इस सदी के शुरू से ही रासलीला के लिए समूचे छत्तीसगढ़ और उसके बाहर प्रसिद्ध था। यहाँ के मालगुजार रीवा से अमरकंटक, रतनपुर होते हुए इस क्षेत्र में आकर बस गये होंगे। उन्हीं के साथ रासलीला का भी यहाँ आगमन हुआ होगा कोसिर सिंह और उनके पुत्र विश्वेश्वर सिंह ने ठाकुर छेदीलाल बैरीस्टर के निर्देशन में यहाँ की रासलीला को रत्नपुर ही नहीं, बल्कि त्रिपुरा काँग्रेस के अधिवेशन तक पहुँचाया था। दूसरी बात राजिम भी शुरू से ही साहित्य-संस्कृति का केन्द्र रहा है। हरि ठाकुर के अनुसार- सन् 1900 के पूर्व राजिम साहित्यिक गति-विधियों का केन्द्र था। विश्वनाथ प्रसाद दुबे,

ठा. दामोदर सिंह वर्मा, प्यारेसिंह वर्मा, पुजारी, ठा. सूर्योदय सिंह वर्मा, क्षेमू प्रसाद शर्मा, गजाधर प्रसाद पौराणिक, प्यारेलाल दीक्षित उस समय के प्रतिष्ठित कवि थे। वे सब राजिम-निवासी थे। उस युग के संत कवि ठाकुर भोला सिंह भी फिंगेश्वर में दीवान होकर पहुँच गए थे। वे भी राजिम की गोष्ठियों में सम्मिलित होने लगे। सन् 1896-97 में राजिम कवि सभा का निर्माण हुआ। पं. सुन्दरलाल शर्मा उसके मंत्री नियुक्त हुए। उस समय उनकी उम्र मात्र 17 वर्ष थी। ऐसा हो ही नहीं सकता कि राजिम का कवि समाज सूर और घनानंद से परिचित न रहा हो। प्रो. जे.आर. वर्ल्यानी ने कुछ और महत्त्वपूर्ण संकेत दिए हैं, उनके अनुसार काँकेर के राजाधिराज नरहरि देव ने अपने राज्य में राजिम के अनेक ब्राह्मण-परिवारों को बसाया था। इनमें दुर्गाप्रसाद तिवारी और जियालाल शर्मा (पं. सुन्दरलाल के पिता) का नाम प्रमुख था। शर्मा जी कांकेर में वकालत करते थे। दुर्गाप्रसाद तिवारी राजा नरहरि देव के प्रमुख सलाहकार और राज परिवार के शिक्षक थे। उन्होंने लाल कोमल देव के साथ सुन्दरलाल शर्मा को संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, मराठी और अँग्रेजी भाषा में पर्याप्त शिक्षा दी थी।

1892 से 1904 तक सुंदरलाल शर्मा का बचपन काँकेर में बीता था। राजा नरहरि देव द्वारा रियासत में प्रतिवर्ष रामलीला और रासलीला होती थी, जिनमें वे अपने साथियों के साथ भाग लिया करते थे। स्वामी वल्लभाचार्य जी का जन्म-स्थान राजिम से लगा हुआ चम्पारण्य है, जहाँ मध्यकाल से साधु-संतों का आना जाना लगा था, तो भजन कीर्तन का होना स्वाभाविक ही था, जिसमें सूर के पद भी गाए जाते रहे होंगे। एक बात और। छत्तीसगढ़ में 'रास' एक अनुष्ठान के रूप में होता है। जाँजगीर ज़िले के गौध निवासी प्रसिद्ध रासधारी दादूसिंह को कौन नहीं जानता ? रासलीला की भाँति छत्तीसगढ़ के विभिन्न अंचलों में नागलीला का प्रचार रहा है। नंद किशोर तिवारी ने 'रास' के शास्त्रीय पक्ष को काफ़ी विस्तार से उजागर किया है। पं. रामनारायण शुक्ल ने 'रास' का कई बार आयोजन किया है।

बालक सुन्दरलाल शर्मा दस वर्ष की उम्र में तुकबंदी करते थे। उनमें काव्य की विलक्षण प्रतिभा थी। छत्तीसगढ़ में उनके समय कृष्णलीला का किसी न किसी रूप में प्रचार था और इन सब का उनकी रचनाओं पर अनिवार्य प्रभाव पड़ा है। कम उम्र में उन्होंने बाईस किताबों का प्रणयन किया था, जिनमें दानलीला, कंसबध और रामायण बालकाण्ड छत्तीसगढ़ी की प्रबन्ध रचनाएँ हैं। शर्मा जी भाषाविद, समाज-सुधारक स्वतंत्रता-संग्राम-सेनानी और अग्र पंक्ति के नेता थे। इन पर बहुतेरे विद्वानों ने लिखा है और लिख रहे हैं। हम यहाँ उनकी अक्षयकीर्ति के आधार 'छत्तीसगढ़ी दानलीला'

पर ही चर्चा करेंगे, जिस पर सूर और घनानंद का स्पष्ट प्रभाव है।

'छत्तीसगढ़ी दानलीला 'मूलतः शृंगारिक रचना है, परन्तु उसका समापन उज्ज्वल रस से होता है। शान्त रस का स्थायी भाव विवेक है। उज्ज्वल रस शान्त रस का ही उच्च शिखर है, जिसमें आनंद ही आनंद होता है। यह लौकिक आनंद से भिन्न परमानंद की अनुभूति है। दानलीला की शुरुआत प्रथम दृष्ट्या प्यार याने लव एट फस्ट साइट से होता है, किशोरी राधिका पहिली बार किशारे कृष्ण को गली खोर में 'ठाढ़े' देखती है और कृष्ण उनके अन्तस् में समा जाते हैं। प्रेम के फंदे में राधा-मछली-सी तड़फने लगती है। दूसरी बार वह उन्हें ग्वालबाल के साथ 'खरिखा' में देखती है। इससे प्रेम में इज़ाफ़ा होता है। मन चरखे-सा चलने लगता है और तीसरी बार स्वप्न में देखती है। यह पूर्वराग है, जिसका परिपाक कुंज-भवन में होता है- कृष्ण मोर-मुकुट पहने गले में बनमाला पहने, पिंवरी पहन हाथ में लाठी और दोहनी लिए कुंज-भवन में जा रहे हैं। राधिका देखती ही रह जाती है, मिटकी तक नहीं मारती। अन्तस् का प्रस्फुटन देखिए-

तब ले मैं बन गयेंव बही
थोरको सुरता चेत नहीं

राधा इस पीड़ा को सखियों से बतलाती हैं और दूध-दही बेचने के बहाने हरिदर्शन की इच्छा करती है। वह डरती भी है। लगता है कृष्ण ने राधा के सिर पर मोहनी थोप दी है। अब जाति-सगा का भय छोड़ना ही पड़ेगा। ललिता, चन्द्रावती आदि सखियों के साथ सिर पर दूध-दही-मक्खन का मटका रखे राधिका घर से निकल पड़ी। ही-ही बक-बक करती, एक दूसरे को चिकोटी काटती वे मथुरा के मार्ग पर पहुँच जाती हैं। सभी के हृदय में हरि-मिलन की अलग-अलग चाह है, लेकिन प्रकट रूप में कोई किसी को कुछ नहीं भी बतलातीं। उधर कृष्ण ताक में हैं-

ओती ले आइन रौताइन,
श्याम देख डग-डग ले पाइन।

गोपियाँ ठिठक जाती हैं। अन्तस् में प्रीति लिए ऊपर से डरी-डरी राधिका आगे पाँव बढ़ाती है। कृष्ण ठसक मारना शुरू कर देते हैं-

रोज-रोज चोरी कर जावौ,
मोला नहीं जगात पठावौ।

इतने में गोपियाँ भड़क उठीं- तुम चोर, तुम्हारे चेले चोर। चोरी करते तुम्हारा

दिन बीतता है, कल ही तुम्हारी चोरी पकड़ी गयी। बाँधे जाने पर हमीं ने सहायता की थी, आज भूल गये। तुम भोगी चंद हो क्या ? वे कृष्ण को डरती हैं-

कंसराज के राज में करो न ऐसन काम,
घुसड़ जाही चाहे सबो, बनेव जगाती श्याम।

अरे दही खाना है तो माँग के खाओ। जबरन एक बूँद नहीं मिलेगी, श्याम ने नहले पर दहला मारा-क्या आँय-बाँय बक रही हो ? भूत पकड़ लिया है क्या ? कंस क्या है हमारे सामने। हम तो तीनों लोक के मालिक है ? कृष्ण की बातें सुन, गोपियाँ खिल खिला उठती हैं- देखो यह निर्लज्ज हो गया है, कलऊ खरा गया है। कृष्ण भी कम नहीं। वे रास्ता रोक लेते हैं और कहते हैं - बिना जगह दिए यहाँ से नहीं जा सकतीं। उत्तर सुनकर गोपियाँ मुँह ऐंठने लगती हैं, यशोदा जी से एक की दो लिखने की धमकी देती हैं, भाई को बुलाकर मजा चखाने की बात करती हैं, फिर देर हो रही है- कहकर आगे बढ़ती हैं। इतने में ही कृष्ण फिर उनका रास्ता रोककर कहते हैं- मैं मुड़ नवा कर जगात वसूलूँगा। छनक-छनक पैरी बजाती गोपियाँ फिर आगे बढ़ती हैं कि कृष्ण किसी की पहुँचा पकड़ गलियाने लगे। गोपियाँ झटका देकर हाथ छुड़ा लेती है कृष्ण दूर जाकर गिरते हैं। झूमा-झटकी में कृष्ण ने सीटी बजा दी। पेड़ की डगालों में छिपे ग्वाल-बाल कूद-कूद कर कृष्ण के पास दौड़े चले आए और झाँझ-मँजीरा ठोंक दिए। कृष्ण ने अपने बलविक्रम का बखान किया तो गोपियाँ मन ही मन खुश हो गई, कृष्ण अब तो फँस गए। बोलीं- लो अपने बल-विक्रम बताओ, तभी बात बनेगी ? अब कृष्ण को कोई दूसरी बात न सूझी तो वे गोपियाँ के रूप-रंग की प्रशंसा करने लगे, बस क्या था, गोपियाँ फसफसा गईं, पिघल गईं, उनके व्यंग्य-वाण यहाँ द्रष्टव्य हैं-

नइये अब कछु ठिकाना दाई,
सुनौ कैसे कथे कृष्ण कन्हाई।

इससे मोहन 'मस्तिया' गये। गोपियाँ बोलीं,- चलो भागो, अब किसी की इज्जत नहीं बचने वाली है, इनकी शिकायत करो। जब सभी उपाय करके गोपियाँ थक गईं तो वे हरि की शरण हो गयीं। मोहन अब जाने भी दो। फिर क्या था, कृष्ण लाठी घुमाकर इठलाने लगे, इशारे ही इशारे कुछ कहने लगे। कृष्ण की रस-भरी बातें सुन गोपियाँ हिरना जैसी उछल पड़ी। कृष्ण बोले - हम तो कामदेव के चाकर हैं। इतना सुनना था कि गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में अपने को सम्हाल न सकीं, वे आनंद रस में डूबने लगीं, किसी को किसी की सुधि नहीं रही। फिर तो कृष्ण की योगमाया सक्रिय हो गयी।

गोपियाँ जो चाहती थीं, वह क्षण भर में पा गईं। राधिका के नस-नस में प्रेम-पूरा (बाढ़) आ गई। गोपियाँ अब समर्पण में झुक गयीं। कृतज्ञ गोपिकाओं के उद्गार अन्तस् को छूने वाले हैं -

कै तुम हौ बैगा हरी, डारेव टोना आय
थोपना ऐसन थोप के, मन ले गयेव चोराय।

अन्त में पूर्णकाम गोपियों ने कृष्ण समेत सभी ग्वाल बाल को दूध-दही-मक्खन का मनमाना दान किया। सभी के बीच राधा और कृष्ण की आँखें चार होती हैं। कृष्ण माँग-माँग कर मक्खन खा रहे हैं, नवनीत-हृदय गोपियाँ निढाल हो गयी हैं-

रोंवा हो गय ठाढ़ सब, आनंद कहे न जाय
आँखी ले आँसू घलो, बहे लगिस सुख पाय

जैसा कि पूर्व में कहा गया है, भाव एवं भाषा दोनों ही स्तरों पर 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' पर सूरसागर और दान-घटा का प्रभाव है। कुछ उदाहरण नमूने बतौर यहाँ दिए जाते हैं, इससे ब्रजभाषा-जैसी समृद्ध भाषा के बरक्स छत्तीसगढ़ी काव्य की अभिव्यंजना शक्ति को नज़दीक से देखा जा सकेगा।

1. *जा दिन ले नंदलाल ल देखेंव खोर।*
(खेलत हरि निकसे ब्रज खोरि)
खरिखा में लरिका लिए देखेव नन्द किशोर
(नंद गए खरखहिं हरि लीनैं देखत तहँ राधिका ठाढ़ि)

यहाँ स्थल साम्य है, फर्क इतना ही है कि कृष्ण राधिका को खरिखा के बीच खड़ा देखते हैं-

2. *बढ़ के तोला गोई! बतावौं नहिं।*
थोरको तोर मेर लुकावौ नहीं॥
(तुम सौ कछु दुरावत नाहीं, कहत प्रकट करि बात)

पहला कथन राधिका जी का है, दूसरा कृष्ण का।

3. *मिलके कभू गोकुल जातेन ओ*
घर सांझक ले फिर आतेन ओ

(ब्रज जुबति मिमि करत बिचार चलौ आजु प्रातहि दधि बेचन अबहिं फिरे आवें)

पहला कथन राधिका जी का है, दूसरा कवि द्वारा गोपिकाओं के विचार का वर्णन है।

4. *मन मोर चोराय सुलेइस है, मोहनी कछु थोप-धौं देइस हे।*

(मोहन मन मोहिनी लगाई)

देखे बिन नन्दलाल के, अब तो नइ रहि जाय

जात सगा डर छांड़ के, धरिहौ मोहन पायं

(लोक-लाज काँच किरचै मोहितो नाहिं और सूझत बिना मृदु मुस्क्यानी बिसर गई कुल के कान्यो)

5. *षट-दस सहित श्रृंगार करति है*

अंग-अंग निरखि संवरति है

इन पंक्तियों का जैसा विस्तार छत्तीसगढ़ी में हुआ है, उतना सूर-कृत दानलीला में एक जगह नहीं, बल्कि इसे बहुत तरुनि इक भाँति जैसी पंक्तियों में समेट लिया गया। 'एक जवंरिहा रहिन सबै ठीक' कहकर यहाँ के आभूषण, वेश-भूषा का विस्तार से वर्णन सुन्दर कवि की कारयित्री प्रतिभा का साक्ष्य है। इसे पढ़ते हुए 'पद्मावत' में वर्णित नख-शिख श्रृंगार का स्मरण हो आता है।

6. 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' में राह चलती गोपियों के हृदय में कृष्ण के प्रति अलग-अलग विचार है। कोई कृष्ण को प्रगाढ़ आलिंगन में बाँध लेना चाहती है, कोई उन्हें दही खिलाती तो कोई चरणों में लोट-पोट होने की इच्छा रखती है, जबकि सूर ने इस विचार को दो ही पंक्तियों में कह दिया है-

बेंचन चली दधि-ब्रजनारि

सबनि के मन जो मिलै हरि, कोउ न कहति उघारि

7. *मन तुम्हार जो आतिस, खातेन लेवना-लूट*

लेतेन यार जगात सब, रौताइन के जूट

तुमला मैं जब करौं इशारा। कूद-कूद आहौ तब झारा

(हँसत सखनि यह कहत कन्हाई,

कूद परौ तब द्रुमनि द्रुमख मानिते, दै दै नंद दुहाई)

8. *साम्हू में सूटी लिये ठाढ़ भइन हरि आय*

आगू मोर जगात दे, पाछू पाहौ जाय
(और सखा संग लिए कन्हाई
आपुसि निकसि गए, आगे मारग रोके जाई)
तुमला आज जान तब देहौं, जब सब दिन के सेती लेहौ
(सुर सूनो बिन दिए दान के जान नहीं तुम पावहु)
चाहे भलुक मांग के खावौ
आवा बइठौ ! दोना लावो।
दधि माखन खेबे को चाहत,
आजहुँ माँग लेहु दधि देहैं
यहाँ भाव और भाषा दोनों स्तर पर मानता है।

9. चोरी करत उमर सब मेले। भयेव बड़े मोहन छोटे ले
काल चोराये जो माखन खाये। आजेच मोहन गये भुलाय
मूसर में जब बाँधिस लाके। तब ह सबो छोड़ायेन जाके
(चोरी करत यही पुनि जानति, घर घर ढूढ़त माडे
और सुनौ जसमति जब बांधे, तब हम किये सहाई
भूलि गए सुधि ता दिन की, तब बांधे जसूदा माई)

10. रोज बिहनिया मथुरा जाथौ। राम भये ले गोकुल आथौ
भल मानुख के बेटी हौके। काम करत हौ चोर पने के
(प्रातहिं तै जाति, गोरस बेचि आवति राति
कहौ कैसे जानिये तुम दान मारे जाति)
यहाँ भी भाव एवं भाषा दोनों स्तरों में समानता है।

'दान-घटा' का भी छत्तीसगढ़ी दानलीला पर कमोवेश प्रभाव है। तीन छंद 'दानघटा' के यहाँ दिए जाते हैं-

1. जीभ संभारि न बोलत हौ
मुँह चाहत क्यों अब खाय थपेरे
ज्यों ज्हयाँ करी कुछु कानि कनौड़े
त्यों मूढ़ चढ़े बढ़े आवत नेरे

2. छैल नए नित रोकत गैल सुफैलम कावै अड़ले भये हैं
लौ लकुटी हंसि नैनन चालम दैन नचावत मैन तए है
कृष्ण का उत्तर भी यहाँ सुनने लायक है-

3. है उनए सुनए न कछु उघटैं कत ऐंड अमैंड अमानी
बैन बड़े-बड़े नैनन के बल बोलति क्यों है इती इतरानी
दान दियै बिन जान न पाइहैं, आहौ चलिखोरि विरावनी
आगै अछूती बुइठ सु गई घर आनंद आज भई मनमानी
दान घटा में जो छटा है उससे छत्तीसगढ़ी दानलीला में कमतर नहीं।

पं. सुन्दरलाल शर्मा नवजागरण के अग्रदूत थे। इसीलिए उन्होंने छत्तीसगढ़ी को इसका वाहक बनाया। उन्होंने कृष्ण के लोकरंजक रूप के माध्यम से छत्तीसगढ़ी को समर्थ बनाने का बीड़ा उठाया पं.शुकलाल प्रसाद पांडेय द्वारा 'एरर्स ऑफ़ कॉमेडी' का 'भूल भुलैया' खंडकाव्य के रूप में रूपान्तरण, मुकुटधर पांडेय द्वारा 'मेघदूत' का भावानुवाद और कपिल नाथ कश्यप द्वरा रामकथा के गायन के पीछे भी यही उपक्रम रहा है। ब्रजभाषा, अँग्रेज़ी, संस्कृत, और अवधी-जैसी समर्थ भाषा के समक्ष छत्तीसगढ़ी भाषा विकसित और सम्पन्न है, यही समानता दिखाने का उद्देश्य है इन कवियों का।

'छत्तीसगढ़ी दानलीला' प्रथम प्रबन्ध कृति होते हुए भी भाषा की दृष्टि से काफ़ी प्रौढ़ है और उसकी जैसी लोकप्रियता आज तक दूसरी रचना को नहीं मिली। और तो और, उसका अन्य कवियों पर जितना प्रभाव पड़ा है, उतना और किसी रचना का नहीं। भाषा के क्षेत्र में यह भी एक क्रांतिकारी क़दम था कि साहित्य रचना के पूर्व ही उसकी व्याकरण लिखा जा चुका था। हीरालाल काव्योपाध्याय ने इसकी भूमिका में लिखा है, ''जउने कर एला बनाइस है, तउने हर नाम कमाइस है।'' भविष्य में छत्तीसगढ़ी का प्रथम कवि 'दानलीला' का कर्ता ही समझा जाएगा।

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं से ज्ञात होता है कि राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में भी 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' की बड़ी चर्चा हुई थी। हम यहाँ एक बात स्पष्ट करना चाहते हैं कि थोड़ी-बहुत समानता के बावजूद 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' में शिल्प और वस्तु दोनों ही दृष्टियों से पर्याप्त मौलिकता है। सूरसागर या परम्परागत दानलीलाओं में गोपियों को कृष्ण ग्वाल-बाल सहित दान-लीला के बहाने ज़रूर रोकते हैं थोड़ी-सी नोक-झोंक भी होती है, किन्तु गोपियों को जैसे ही ज्ञात होता है कि कृष्ण साक्षात् परमब्रह्म हैं और भक्तों के हेतु ही अवतार लिए हैं, तब वे तुरन्त पिघल जाती हैं, और भक्ति भाव से कृष्ण समेत ग्वाल-बाल को दूध-दही का दान करती है। छत्तीसगढ़ी दानलीला की गोपियाँ यहाँ की ठेठ रौताइने हैं, देहाती होती हुई भी चतुर हैं, तर्क करने में वे नंददास की गोपियों से कम नहीं। वे अपना मतलब सिद्ध करने के लिए जान

बूझकर कृष्ण को चिढ़ाती हैं। वे उटका-पंची करती हैं, कृष्ण के माँ-बाप, यहाँ तक नेरुहा तक को गिन देती हैं। कृष्ण को सबक सिखाने के लिए भाइयों से मजा चखाने की धमकी भी देती हैं। जैसे ही कृष्ण गुस्से में अपने बल-विक्रम का बखान करते हैं, गोपियाँ उन्हें अपने जाल में फँसा लेती हैं -

ले तो भला देखाव तो, तभ्भे बनही बात
फोकट के नोहै बने, कखरो करबो घात

इससे कृष्ण निरुत्तर हो जाते हैं। जब उन्हें कुछ भी बात नहीं सूझती, तो गोपियों की प्रशंसा करने लगते हैं। कवि का मनोविज्ञान देखने लायक है-

केरा जांघ नख्ख है मोती। कहाँ बांचिहौ कोती ?
कँवल बरोबर हाथ देखाथौ। छाती हंडुला सोन ल जाथौ
बोड़री समुंद हवै पँड़की गर। कुंदरु ओट दाँत दरमी कर
सूरज चन्दा मुँह में आहै। टेड़गा भऊँअओ कमठा हे
तुरतुराय मछरी कस आँखी। हे हमार संगी मन साखी
सूबा चोच नाक ठौके हे। साँप सरिक बेणी ओरमे हे
खात-खात सिद्धाय-गै, दूध दही औ भात
नइ तेखर संग काम है, लेहौं यही जगात

अपनी रूप-प्रशंसा और 'पातर-फूहर' बातें सुनकर गोपियाँ मुच-मुचा उठीं। कोई मुँह बिचकाने लगी, तो कोई भवें नचाने लगी। भीतर से प्रसन्न, ऊपर से रूठने का अभिनय करती हुई वे बोल पड़ीं-

गोकुल म आवन नहीं, अपटत हवन घलाय
गाज परै आगी लगै, काले चलब पराय

इसके बाद भी कृष्ण अपनी बात पर अड़े हुए हैं । हार कर गोपियाँ उनके शरणागत हो जाती हैं। सूर्यास्त होने में थोड़ी देर है, अब जाने भी दो, गोपियों की बातें सुनकर अब तो कृष्ण लाठी भाँजते हुए फिर सामने आ गए, बोले अब अपनी औक़ात में आ गई ? कृष्ण के तर्क के सामने गोपियाँ हार-हार जाती हैं- तुम लोगों को यदि मैं छोड़ देता हूँ और राजा मुझसे जगात माँगेंगे, तो क्या कहूँगा। यहाँ कवि की नवीन उद्भावना द्रष्टव्य है-

मोहन कहिन सुनौ रौताइन, राजा कंस ला कौन डेराइन
हम जो राजा के चाकर अन, तेला सुनौ बतावत हम हन
काम महीप नाव ओखर है, राज तीन लोकन-के भर हे
भरती चढ़ती असन जवानी, तौन आय ओखर रजधानी
लिगरी आँखी दूत लगाइन, मोला बीरा देय पठाइन
तेखर भेते ले मैं आयेव, तुम्हला इहौं जगात सुनायेंव

इस बात को सुनकर गोपियाँ अपना पराया सब भूल गई, सभी की आँखें मूँद गयी। प्रेम में आठों अंग भीगकर शिथिल हो गए। सूर की या अन्य दानलीलाओं में यह प्रसंग नहीं है। योग-माया से कृष्ण और गोपियों का यहाँ मिलन होता है। फिर कृष्ण अपनी माया तुरन्त खींच लेते हैं। सभी की आँखें खुल गई। पूर्व में बताया गया है, योगेश्वर कृष्ण के अनुग्रह से ही जीव-रूपी गोपियाँ नित्य-लीला में प्रवेश पाती हैं, छत्तीसगढ़ी काव्य की यह उच्चतम भूमि है; लॉजाइनस के शब्दों में विशुद्ध उदात्त तत्त्व है।

इसके अतिरिक्त लोक-जीवन और संस्कृति के स्तर पर भी यहाँ मौलिकता है और यही इसकी लोकप्रियता का रहस्य भी है। प्रथम तो यहाँ ब्रजमंडल का ठेठ छत्तीसगढ़ी-करण कर दिया गया है। छत्तीसगढ़ चरवाहा और कृषि संस्कृति का संगम-स्थल है। यहाँ बड़ी संख्या में यदुवंशी (रावत) निवास करते हैं। यहाँ गोपिकाएँ 'रौताइन' के रूप में परिकर बनाई गई हैं। दूसरी बात, कृष्ण और गोपियों का रूप-रंग, पहनावा, उठना-बैठना, चलना-फिरना, बात-चीत का लहजा अर्थात् सम्पूर्ण आचार-विचार छत्तीसगढ़ी लोक-जीवन में ढला हुआ है। तीसरी मौलिकता दार्शनिक दृष्टिकोण में है। गौड़ीय सम्प्रदाय की निकुंज लीला और वल्लभाचार्य सम्प्रदाय की रास-लीला यहाँ दानलीला में अन्तर्भुक्त हो गई है।

शिल्प की दृष्टि से भी इसमें पर्याप्त नवीनता है। परम्परागत दानलीला अधिकांश में पदशैली में लिखी गई है। 'दान-घटा' ज़रूर कवित्त-सवैया में निबद्ध है। यहाँ सुन्दर कवि ने जायसी और तुलसी को आदर्श मानकर दोहा-चौपाई छंदों में इसे लिखा है, जो प्रबन्ध-काव्य के लिए टकसाली सिद्ध हो चुके हैं। इसकी शुरुआत सवैया से और समापन त्रोटक से हुआ है। इसमें सर्ग-विभाजन नहीं हुआ है। कहानी की शैली में इसकी कथा सरपट आगे बढ़ती है। शास्त्रीय खंडकाव्य का पूर्ण विधान यहाँ नहीं मिलता है। इसे खण्डकाव्य न मानकर लघु प्रबन्ध या नैरेटिव पोइट्री कहा जाय तो

अधिक उपयुक्त होगा। काव्य सौंदर्य की दृष्टि से भी यह काफी महत्त्वपूर्ण है। छत्तीसगढ़ी कविता की चर्चा करते समय विद्वान इसका उद्धरण देना नहीं भूलते, जिससे उसकी महत्ता सिद्ध होती है। शारीरिक शृंगार का एक उदाहरण देखिए -

काजर आंजे अलंग डारे। मूड़ कोराये पाटी पारे॥
पांव रचाये बीरा खाये। तरुवा में टिकली चटकाये॥
बड़का टेड़गा खोपा पारे। गोंदा खोंचे गजरा डारे॥
कोनो पैरी चूरा जोड़ा। कोनो गंठिया कोनो तोड़ा॥
कोना ला घुंघरू बस भावै। छुमछुम छुमछुम बाजत जावै॥
खनर खनर चूरी सब बाजै। खुल के ककनी हाथ बिराजै॥
पहिर बहुँटा और पछेला। जेखर रहिस सौख हे जेला॥
विल्लोरी चूरी हलवाही। रत्तन-पिंडरी औटिकली॥

इसके आगे करधन, कमरपट्टा, सूता, सूरा कटवा, दुलरी, तिलरी, पुतरी, खोटिला, ढार, खिलवा, झुमका, नथ, चुटकी, मुँदरी, अनबट, बिछिया याने उस समय के, छत्तीसगढ़ी में प्रचलित सभी प्रकार के आभूषणों का वर्णन है, जो सोने, चाँदी, पीतल और राँगे से बनते थे, साथ ही गोदना, जुगजुगी माला, और पोत की माला का अक्षत सौंदर्य। इसी प्रकार, परिधानों का वर्णन बड़ा ही मनोहारी है-

पहिरे लूगा लाली पिंयरा। देखत में मोहत हे जियरा॥
डोरिया पातल सारि अंचरहा। मेघी चूनरी कोर-सपरहा॥
मुंडा ढिंक के सोरा हत्थी। पहिरे रेंगत हे एक संत्थी॥
हलबिन पाटा तिरनी मोरे। कोने गँड़-उंचरा है जोरे॥

किसी ने किसी के बाएँ कंधे को पकड़ा है तो किसी ने किसी के दाएँ कंधे को। किसी ने रेशमी चोली पहनी है, तो किसी ने धूपछाँही। गोपिकाओं की शारीरिक चेष्टा और हाव-भावों के वर्णन में कवि ने तो कमाल ही कर दिया है -

चिमटें मसकें भरे जवानी। होत जात हे गिद्ध मसानी
कोनो तो मुड़ उघरा जावै। छाती ओढ़ना कोनो गिरावै
कोनो-के लुगरा खिंच लेवै। गुद गुदाय कोनो ला-देवै
नथ उठाय के पाछू-झूकैं। और फेर कोनो पिच्चले थूकैं
कोनो हांसै कोनो हंसावै। टेड़गा देखैं मुंह बिचकावैं

यहाँ कवि ने रूप-सौंदर्य के वर्णन में कहीं सुघड़ देह-यष्टि के लिए साहश्य-मूलक अलंकारों का प्रयोग किया है, जो कहीं शब्दालंकारों को खासकर अनुप्रास की छटा से, ध्वनि, चित्र, गति और प्रकाश को सहज रूप से दिखाया है। उसने जगह-जगह मुहावरों का सुन्दर प्रयोग करके भाषा को जानदान भी बना दिया है। माधुर्य गुण और व्यंजना शक्ति के कारण यहाँ अर्थ-गौरव बढ़ गया है। साहश्य-विधान के कुछ उदाहरण लीजिए -

मया-फंदा म राधिका मछरी अस तड़फाय (रूपक, उपमा)
चरिखा सरिखा तभिच ले गिंजरत हे मन मोर (उत्प्रेक्षा, अनुप्रास)
केरा जांघ नचत है मोती (रूपक)
कँवल बरोबर हाथ दिखावै (उपमा)
छाती हँडुला सोन लजावे (प्रतीप)
मोहन गँइन फेंकाय कोस भर (अतिशयोक्ति)
फोर भिंगोरा जनमिन मोहन (कटाक्ष)
दौरी फांदे के जस लाइक (दृष्टान्त)

अनुप्रास की निराली छटा के कारण 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' पूर्णतया संगीतात्मक रचना बन गई है। कुछ उदाहरण देने का लोभ संवरण ही नहीं हो पा रहा है - 'तब दौर पोटार के लाज' 'हलर-हलर डोलिन डारा मन, पातर-फूहर गोठ सुन मुचमुच मुचमुच, देखा डारिन भडुवामन' सुनत बात हँसत हे मोहन, चोर चोर के चेला मोहन, सुन्दर श्याम सुनौ रूप इसी प्रकार 'मुड़ा पूर गइस', 'हड़िया के मुँह दिए पराई', 'बीरापान मेंई पठाई', 'भूत धरे कस', 'दहरा म बूड़ मरा', 'गोदना अस गूदत हे', 'मोहन कछु थोप दइस हे', 'टेटका के पहुँच बारी तक, 'गिद्मसानी', 'मुड़ पटकना', 'नेरुहा गाड़ना', 'घुसड़ जाना', 'कलउ खराना', 'लोखन के उच्चैया', 'मुँह न देखना', जैसी लोकोक्तियों से उक्ति-वैचित्र्य में बाँकपन आ गया है। मुचमुच-मुचमुच, खनर-खनर, खुसुर-फुसुर, छनाक-छनाक, जतर-खतर, आँय-बाँय जैसी पुनरुक्तियों से यहाँ भाषा और भी सरस हो उठी है। ये बिम्ब, ये ध्वनियाँ मानस पटल पर अमिट चित्र खींचने में सर्वथा समर्थ हैं, देखिए भला-

'उड़-उड़ चूँदी मुँह म आवै', 'नाक न में सुन्दर नथ डोलै', 'तुरतुराय मछरी कस आँखी, मुस्की ढारत रजकण झारत'.....।

प्रस्तुत दानलीला में ठेठ छत्तीसगढ़ी के शब्द-चयन के कारण यहाँ की लोक -

संस्कृति का रंग एकदम 'चटक' हो गया है, लेकिन कहीं-कहीं शब्द-विचलन के कारण सौंदर्य-बोध भी बाधित हो गया है। आचार्य भामह के अनुसार-

"शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्", शब्द और अर्थ का सामंजस्य या अद्वैत ही काव्य है, यही काव्य की, कवि की सिद्धि है। लेकिन कहीं-कहीं बड़ी गड़बड़ी भी यहाँ देखने को मिलती है-

"तरुवा, म टिकली चपकाए ठलहा कोनो अंग रहे ना, गोदना ठाँव-ठाँव गोदवाए, चुटकी चुटका गोड़ सुहाए, देखत डउकन के दिल भूले"।

रेखांकित शब्दों का प्रयोग चिन्ता का विषय है, इनकी जगह क्रमशः माथा, जुच्छा, अंग-अंग, पाँव रखकर देखिए तो भला, ये अर्द्धालियाँ खिल-खिल उठेंगी। तरुवा सुखागे (ताल्लू) तरुवा तिपगै (सिर का मध्य भाग) 'ठलहा' कालबोधक क्रिया है। यहाँ विशेषण का प्रयोग उचित होगा। ठाँव-ठाँव, स्थानवाचक शब्द है। यहाँ अंगवाचक शब्दों का प्रयोग होना चाहिए था। व्यवहार में 'दिल भूले' की जगह 'मन भूले' ठीक रहेगा। एक स्थल पर एक पात्र द्वारा एक ही वस्तु के कई समानार्थी शब्द प्रयोग में लाए जा सकते हैं, लेकिन भिन्नार्थक प्रयोग से अर्थ-सौंदर्य बाधित होगा। कवियों को ऐसे प्रयोग से बचना चाहिए, देखिए तो-

1. आगू ठाठ भइन हरि जाके, लौड़ी लिए हाथ परसा के
2. साम्हू सूँटी लिए। ठाढ़ भइन हरि आय
3. आइन पकरे ठेंगा भारी

लौड़ी, सूँटी, और ठेंगा यहाँ समानार्थी शब्द के रूप में प्रयुक्त हुए हैं जबकि इन शब्दों में बड़ा फ़र्क़ है। दूसरी बात, 'परसा' की लौड़ी की जगह 'लबदेना' 'डंडा' शब्द बेहतर होगा, तेंदू या बाँस की लाठी में 'सुघराई' भी अधिक है और वह टिकाऊभी कम नहीं होती। 'सूँटी' पतली व लचीली होती है। लौड़ी की चमक और ठेंगा में कड़कपन का बोध होता है। आचार्य जगन्नाथ के अनुसार शब्द को रमणीयार्थ का प्रतिपादक होना चाहिए। इस हिसाब से यहाँ भी कम गड़बड़ी नहीं हुई है -

'एक जँवरिहा रहिन सबै ठिक, दौरी के फाँदे लाइक', 'रग छाती कुला उधारे' जैसी पंक्तियों में भदेसपन है, जो काव्य-सौंदर्य को बाधित करता है। इसी प्रकार 'कहाँ जाहा भोसड़ी मन', 'वोकर भोसड़ा उमचाहौं', या 'भड़ुवा' जैसे शब्द देहाती अंचल में अस्वाभाविक नहीं है, लेकिन बोलचाल की भाषा और काव्य-भाषा में बड़ा फ़र्क

है। कवियों को यह बात भी नहीं भूलनी चाहिए। वैसे सूर ने भी 'जीवनदान लेऊँगो तुमसे' जैसे रतिदाम का प्रयोग किया है, जिसके सामने उपर्युक्त शब्द-प्रयोग कोई विशेष माने नहीं रखते। इसके बावजूद कवि का उद्देश्य होता है समाज को संस्कार देना।

पं. भुवनलाल मिश्र के अनुसार इसका रचनाकाल सन् 1905 और हरि ठाकुर के अनुसार 1903 है। उस समय पं. सुन्दरलाल शर्मा की उम्र 23 से 25 वर्ष ठहरती है। यह उन के युवा काल की रचना है -

इसका पहली बार प्रकाशन सन् 1912 में हुआ था। दूसरा संस्करण सन् 1914 और 1915 के बीच होना चाहिए, क्योंकि मई 1915 की मासिक 'हितकारिणी' में इसका ज़ोरदार विज्ञापन छपा था। इसके संपादक पंडित रघुवर प्रसाद द्विवेदी ने इसी अंक में यह टिप्पणी लिखी थी- ''यह छोटी-सी पुस्तक छत्तीसगढ़ी हिन्दी में लिखी गई है। यद्यपि इसका विषय प्राचीन है, तथापि लेखक ने इसमें स्थानीय भाव तथा आचार अंकित करने की चेष्टा की है। कई स्थानों में कविता स्वाभाविक हुई है। यह भाषाविदों के बड़े काम की है..... शुद्ध छत्तीसगढ़ीमें यावनी शब्द बहुत कम आते हैं और लेखक ने इसमें यथाशक्ति रूढ़ शब्द लाने का प्रयत्न किया है, जिसमें भाषा की स्वाभाविकता में अन्तर पड़ा है- पुस्तक की भूमिका से प्रकट होता है कि यह पुस्तक छत्तीसगढ़ी पढ़े और अपढ़ दोनों प्रकार के पाठकों को बड़ी रुचिकर हुई है और हमारी समझ में यह ऐसा ही है। इसमें कहीं-कहीं अश्लीलता आ गई है, उसका समर्थन न करके लेखक महोदय निरोपयोगी करें तो पाठक का हित होगा, पुस्तक का वाह्य कलेवर मनोहर है।'' (साहित्य चर्चा हितकारिणी, जून 1915, पृ. 107)

एक छत्तीसगढ़-निवासी के नाम से भी किसी ने इस किताब की कटु आलोचना की थी, मुख्यांश यहाँ दिए जाते हैं-

पुस्तक में काव्य-संबंधी इतनी अधिक अशुद्धियाँ दीख पड़ीं कि उन सबको लिखने से दानलीला सदृश्य कई पोथियाँ बन सकती हैं..... पुस्तक को पढ़कर कोई भी छत्तीसगढ़वासी समझ सकता है, यह पुस्तक कितनी घृणित और भ्रष्ट करने वाली है। मैं प्रत्येक छत्तीसगढ़वासी और त्रिपाठी जी को सलाह देता हूँ कि अपने प्रांत के अबोध बच्चों तथा नवयुवकों पर दया कर इस पुस्तक की अवशिष्ट प्रतियों को अपने-अपने गाँव के पास की सरिताओं को समर्पित कर दें, ताकि इस प्रान्त का जन-समाज चरित्र भ्रष्ट न होने पावे।

मासिक 'हितकारिणी' जुलाई 1917 पृ. 148-149 में ऐसी आलोचना पढ़ने

के बाद कोई भी युवा-कवि अपना आपा खो बैठेगा। परन्तु शर्मा जी ने इसके जवाब में सम्पादक को एक लम्बा पत्र लिखा । संपादक महोदय ने उनका प्रतिवाद संक्षेप में प्रकाशित किया। यहाँ तत्कालीनल आलोचना-प्रत्यालोचना की एक बानगी दी जाती है-

पुस्तक पर वह समालोचना शुद्ध हृदय से नहीं, द्वेष-भावपूर्ण हृदय से निरी हानि पहुँचाने को लिखी गई है। पुस्तक की उत्तमता के प्रमाण दिए जाते हैं-

1. छत्तीसगढ़ के सज्जनों ने उसकी प्रशंसा की है और सैकड़ों प्रशंसा-पत्र भेजे हैं।

2. दीन ग्रामीणों ने इसे खरीदा और सैकड़ों ने कंठगत कर लिया है।

3. किसी धूर्त पुस्तक-विक्रेता ने चोरी से दस सहस्र प्रतियाँ छापकर बेच दी हैं।

4. द्वितीय वृत्ति की 4000 प्रतियाँ अब समाप्त होने को हैं।

5. रायबहादुर हीरालाल बी.ए., माधवराव सप्रे बी.ए., साहित्याचार्य बाबू जगन्नाथ प्रसाद 'भानुकवि' प्रभृति विद्वानों ने तथा वेंकटेश्वर समाचार इन्दु, सुधा निधि आदि सामयिक पत्रों ने इसकी प्रशंसा की है।

6. शृंगार रस सब रसों में प्रधान समझा गया है और संस्कृत-कवियों ने उस रस की कविता बहुत की है, अत: दानलीला का शृंगार रस दूषित नहीं माना जा सकता।

अन्त में सम्पादक महोदय की टिप्पणी और भी ज़ोरदार है- त्रिवेदी जी (पं. सुन्दरलाल शर्मा) चैलेंज देते हैं कि इन भूलों को प्रकट करने वालों को हम एक हज़ार दण्ड स्वरूप किसी अच्छे काम में व्यय करने के लिए देने को तैयार हैं - प्रतिवाद जैसा कि उन्होंने सूचित किया है, प्रयाग के 'विद्यार्थी' मासिक पत्र में इस मास से क्रमश: छपने वाला है। (हितकारिणी, अक्टू. 1917, पृ. 277/279)

उपर्युक्त वाद प्रतिवादों से स्पष्ट है कि उस समय आलोचना-साहित्य का सम्यक् विकास नहीं हो पाया था। प्रशंसा या निंदा करना या फिर गुण-दोष दिखाना ही तब आलोचना कहलाती थी। रसास्वादन करने या कराने के आलोचना-कर्म से तब के कवि और आलोचक लगभग अनजान थे। गंभीर आलोचना जिसका उद्देश्य सौंदर्यबोध का निदर्शन है, आचार्य शुक्ल के आने के बाद ही प्रारंभ होती है। ऐसे मौके पर उन्होंने कहा भी है- सुन्दर और कुरूप काव्य में बस ये ही दो पक्ष हैं, भला-बुरा, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य, मंगल-अमंगल, अनुपयोगी-उपयोगी ये शब्द काव्य-क्षेत्र के बाहर के हैं, ये नीति, धर्म, व्यवहार, अर्थशास्त्र आदि के शब्द है। विशुद्ध काव्य-क्षेत्र में न कोई

बात भली कही जा सकती है न ही बुरी, न शुभ न अशुभ, न उपयोगी न अनुपयोगी। बस ये बातें केवल दो ही रूपों में दिखाई देती हैं- सुन्दर और असुन्दर। दूसरी बात, उस समय हमारी बोली छत्तीसगढ़ी को लेखन के क्षेत्र में हिन्दी भी कहा जाता था। लगता है, तत्कालीन साहित्यकार छत्तीसगढ़ी साहित्य-लेखन के प्रति विशेष रूप से सचेत नहीं थे। इस दृष्टि से प्रस्तुत कृति का महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है। ठेठ छत्तीसगढ़ी के शब्द-चयन से यहाँ का लोकजीवन और संस्कृति यहाँ पूर्णरूप से अभिव्यंजित हुई है। काव्य-सौंदर्य से भी महत्त्वपूर्ण बात थी उस समय के शब्द संरक्षण की और छत्तीसगढ़ी में लेखन की। इस दिशा में 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' छोटा-मोटा 'कोश' ही है। यह पहली कृति है, जिसकी चर्चा राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में हुई थी। इसका चौथा संस्करण 1924 में हुआ था, जिसका पुनर्प्रकाशन डॉ. चित्तरंजन कर के संपादन में सन् 1981 में राजीवलोचन महाविद्यालय, राजिम में हुआ था। तत्पश्चात् हरि ठाकुर के संपादन में पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर द्वारा सन् 2000 में हुआ है। पं. सुन्दरलाल शर्मा छत्तीसगढ़ व छत्तीसगढ़ी के महान सपूत थे। उनका एक-एक शब्द हमारी अमूल्य धरोहर है। हमारी अस्मिता की पहचान 'छत्तीसगढ़ दानलीला' छत्तीसगढ़ी साहित्य का कंठहार है।

❖

पं. सुन्दरलाल शर्मा का छत्तीसगढ़ी साहित्य में योगदान

(संदर्भ इतिहास का)

■ डॉ. जीवन यदु

पं. सुन्दरलाल शर्मा ऐसे ऐतिहासिक-दौर की उपज थे, जिसमें चेतनाशील रचनाकर्मी को एक साथ कई दायित्वों का निर्वहण करना आवश्यक था और पं. सुन्दरलाल शर्मा ने किया भी वही। वस्तुत: उनका प्रमुख उद्देश्य देश को स्वतंत्र कराने के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन की गति तेज़ करना था और इसके लिए उन्होंने अनेक कोणों से अपनी रचनाशीलता का उपयोग किया। वास्तव में उनके सारे कर्म राष्ट्रीय आन्दोलन को समर्पित थे। समाज-सुधार और साहित्य-कर्म उनके राष्ट्रीय-आन्दोलन से किसी भी तरह अलग नहीं थे। अपने प्रमुख उद्देश्य की पूर्ति के लिए शर्मा जी ने इन कार्यों को भी अपने हाथ में लिया था। वे क्षेत्र की विशृंखलित और बिखरी हुई शक्ति को एकत्रित करके महाशक्ति का रूप देना चाहते थे, ताकि, ग़ुलामी का जुआ उतार फेंका जा सके, जिसके लिए उन्होंने दूर पड़ी हरिजन-शक्ति को समाज और राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया और इस प्रयास के लिए उन्हें बदनामी भी झेलनी पड़ी थी। साहित्य के माध्यम से जन-जागृति और जन-संस्कृति के प्रति प्रीति अंकुरित करने का कार्य उन्होंने अपनी पूरी प्रतिभा के साथ संपादित किया। उन्होंने न केवल साहित्य-सृजन किया, अपितु एक नयी रचनाशीलता को जन्म भी दिया, जिसका प्रभाव हम स्व. कुंजबिहारी चौबे तक की पीढ़ी में देख सकते हैं। आज़ादी के पहले तक के रचनाकार पं. सुन्दरलाल शर्मा की रचनात्मक ऊर्जा से प्रभावित रहे हैं- यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं है। चाहे 'खुसरा चिरई के बिहाव' के कवि कपिलनाथ मिश्र हों, या चाहे 'काँग्रेस आल्हा' लिखने वाले पुरुषोत्तम लाल हों, अथवा चाहे 'लड़ाई के गीत' लिखने वाले किशनलाल ढोटे हों, चाहे कुंजबिहारी चौबे हों- किसी न किसी रूप में वे पं. सुन्दरलाल शर्मा के कृतित्व (साहित्य और समाज से सम्बंधित) से प्रभावित अवश्य दिखते हैं। यदि कोई रचनाकार तीन-तीन दशकों को अपनी रचनात्मकता से आन्दोलित करता है, तो क्षेत्र का रचना-संसार उस पर अवश्य गर्व करना चाहेगा।

पं. सुन्दरलाल शर्मा के साहित्यिक योगदान को और उनके साहित्य की सार्थकता को इतिहास से अलग करके समझा नहीं जा सकता। उनकी रचना के बीज इतिहास में

ही मिलेंगे। अत: सन् 1904 से सन् 1947 तक के छत्तीसगढ़ी कविता-संसार पर दृष्टिपात करके उनके प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष योगदान को हम समझ सकते हैं।

कुछ विद्वान् पं. सुन्दरलाल शर्मा को छत्तीसगढ़ी कविता का 'आदि कवि'[1] मानते हैं। पं. सुन्दरलाल शर्मा ने सन् 1913 में छत्तीसगढ़ी का प्रथम खंड-काव्य 'दानलीला' का प्रकाशन कराया था। यह खंड-काव्य अपनी रसमयता और भाषायी-सम्पन्नता को सिद्ध करता हुआ भी विवाद का विषय रहा है, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि यह काव्य पं. सुन्दरलाल शर्मा को न केवल महाकवि सिद्ध करता है, अपितु समीक्षकों को भी लिखने को बाध्य करता है- "भविष्य में जब भी छत्तीसगढ़ी भाषा का इतिहास लिखा जाएगा, इस दानलीला का कर्ता ही छत्तीसगढ़ी भाषा का प्रथम कवि माना जाएगा।"[2] 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' की भूमिका लिखते हुए रायबहादुर हीरालाल ने लिखा था- 'मेरी राय में जउने हर एला बनाइस है, तउने हर नाम कमाइस है, क्योंकि भविष्य में छत्तीसगढ़ी का प्रथम कवि इस 'दानलीला' का कर्ता ही समझा जायेगा।'[3]

यदि हम पं.लोचन प्रसाद पाण्डेय और पं. सुन्दरलाल शर्मा की कविताओं के प्रकाशन-काल पर ध्यान दें, तो 1904 और 1913 के बीच 9 वर्ष का अंतर दिखाई देता है, जो पं. लोचन प्रसाद पाण्डेय को छत्तीसगढ़ी का प्रथम कवि सिद्ध करता है। यह अलग बात है कि पं.लोचन प्रसाद पाण्डेय मूल रूप से हिन्दी के रचनाकार थे। अनेक भाषाओं में रचना करनेवाला रचनाकार किसी एक ही भाषा की आत्मा से साक्षात्कार कर पाता है। यह सच है कि उन्होंने बेहतर रचनाएँ हिन्दी-जगत को दी थीं। अत: सुन्दरलाल शर्मा आधुनिक छत्तीसगढ़ी काव्य के पुरस्कर्ता हैं, यद्यपि उनके काल के अन्य कवियों ने भी छिटपुट तुकबंदियाँ रची थीं तथा हिन्दी शब्दों को छत्तीसगढ़ी के नाम से खपाने की चेष्टा की थी, किन्तु पं. सुन्दरलाल शर्मा ने ही सर्वप्रथम छत्तीसगढ़ी को ग्राम्य भाषा के पद से उठाकर साहित्यिक भाषा के पद पर अधिष्ठित किया और उसे मानवीय मनोभावों के संवहन योग्य बनाया।[4]

विद्वान् समीक्षकों के तर्कों से पहली बात जो स्पष्ट रूप से उभरती है, वह यह कि छत्तीसगढ़ी कविता का मुद्रण-प्रकाशन 1904 के आसपास प्रारंभ हुआ, लेकिन भाषा और संस्कार के स्तर पर छत्तीसगढ़ी में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ। छत्तीसगढ़ी पर हिन्दी के रचनाकारों की भाषायी संस्कृति की स्पष्ट छाप थी। उदाहरण के तौर पर पं.लोचन प्रसाद पाण्डेय की कविता में आये 'भोर' शब्द को रखा जा सकता है। दूसरी बात, जो सामने आती है, वह यह कि पं. सुन्दरलाल शर्मा से छत्तीसगढ़ी

कविता में नए युग का प्रारंभ ही नहीं हुआ, वरन् कविता अपनी पूरी सृजनात्मक शक्ति के साथ उभर उठी। यह साधारण बात नहीं कि "मध्यप्रदेश के ख्यातिप्राप्त साहित्यकार श्री रघुवर प्रसाद द्विवेदी ने तत्कालीन 'हितकारिणी' पत्रिका में इसकी (छत्तीसगढ़ी दानलीला) कटु आलोचना की थी एवं इस पर प्रतिबंध लगाने का सुझाव दिया था। इसके बावजूद यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय हुई और उसने पूरे छत्तीसगढ़ क्षेत्र में हलचल मचा दी थी।"[5] पं. सुन्दरलाल शर्मा की कृति के प्रकाश में आने के बाद छत्तीसगढ़ी एकाएक सृजन-शक्ति से युक्त साहित्य की भाषा बन गई, जबकि पं.लोचन प्रसाद पाण्डेय की कविता से ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था।

सत्रह जुलाई उन्नीस सौ सत्रह को पं.माधवराव सप्रे ने पं. सुन्दरलाल शर्मा की उक्त पुस्तक की प्रशंसा में लिखा- "मैं यह देखता हूँ कि छत्तीसगढ़ निवासी भाइयों में आपकी इस पुस्तक का कैसा लोकोत्तर आदर है।"[6] इन बातों से साफ़ ज़ाहिर है कि छत्तीसगढ़ी भाषा की सृजनात्मक शक्ति को ही नहीं, अपितु कविता के सूक्ष्म विचारों को वहन करने की शक्ति को भी पं. सुन्दरलाल शर्मा ने पहचाना था। यही नहीं, उन्होंने उस शक्ति का भरपूर उपयोग भी किया था। अत: छत्तीसगढ़ी कविता की मुद्रित प्रकाशित रूप में सही शुरूआत पं. सुन्दरलाल शर्मा से ही होती है। भाषा का उपयोग उसकी शक्ति के साथ होना चाहिए, यह बात पं. सुन्दरलाल शर्मा ने सिद्ध कर दी थी।

प्रकाशन-सुविधा मिलने के पश्चात् छत्तीसगढ़ी कविता ने निरन्तर विकास किया है। प्रारंभ में छत्तीसगढ़ी कविता की भाषा में ठेठपन की कमी दिखाई देती है, जिसकी तरफ़ समीक्षकों ने संकेत करते हुए "हिन्दी शब्दों को छत्तीसगढ़ी के नाम से खपाने की चेष्टा" कहा है। पश्चात् कविता की भाषा में छत्तीसगढ़ीपन स्पष्ट दिखाई देता है, जिसे भाषा पर क्षेत्र के संस्कार की छाप भी कह सकते हैं।

मुद्रित-प्रकाशित छत्तीसगढ़ी कविता के विकास को डॉ. नरेन्द्र वर्मा ने तीन 'उन्मेषों' में विभाजित किया है, किन्तु इन उन्मेषों के विभाजन का आधार स्पष्ट नहीं है। यद्यपि द्वितीय और तृतीय उन्मेषों के आधारों की सांकेतिक सूचना मिलती ज़रूर है। उदाहरण के तौर पर 'छत्तीसगढ़ी काव्य का दूसरा उन्मेष स्वाधीनता-आन्दोलन की हलचलों के मध्य होता है।'[7] और 'छत्तीसगढ़ी काव्य में तृतीय उन्मेष का समारंभ 'छत्तीसगढ़ी' मासिक के प्रकाशन के साथ होता है।'[8] इस तरह के विभाजन को इतिहास-साक्षेप आधार नहीं मिल पाता। जिस तरह हिन्दी कविता के इतिहास में 'तारसप्तक' के प्रारंभ को 'नयी कविता' का प्रारंभ मान लिया गया, बिलकुल उसी तरह का श्रेय

'छत्तीसगढ़ी-मासिक' के प्रकाशन को दिया गया है। इसी तरह द्वितीय उन्मेष को स्वाधीनता-आन्दोलन की हलचलों के मध्य बताया गया है, किन्तु स्वाधीनता-आन्दोलन कई दशकों में फैला हुआ है और इन दशकों की अपनी विशिष्टताएँ हैं। अत: यह निश्चित है कि दशकीय विशिष्टताओं से कविता अवश्य प्रभावित हुई होगी। यहाँ यह बात भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि तत्कालीन राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय परिदृश्य में घटित घटनाओं से प्रभावित दशकों के बीच कोई बारीक़ रेखा नहीं खींची जा सकती। प्रभाव दशक विशेष की सीमा में बंधा नहीं रह सकता। पिछले दशक की विशेषताएँ अगले दशक में कुछ या अधिक दूर तक फैल सकती हैं, अत: कविताओं के वैशिष्ट्य के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक घटनाक्रमों का अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि ये घटनाक्रम ही कविता के इतिहास-सम्मत विभाजन के आधार बन सकते हैं।

छत्तीसगढ़ी कविता के इतिहास को डॉ.विनय कुमार पाठक ने उन्मेषों में समेटने की कोशिश की है और उन उन्मेषों को ऐतिहासिक आधार देते हुए वे लिखते हैं- 'सन् 1900 स्वतंत्रता के पहली तक के साहित्य ले 'प्रथम उन्मेष' अउ ओकर पाछू ले आज तक ल 'द्वितीय उन्मेष' कहि सकत हन।'[9] डॉ. विनय पाठक के इस विभाजन को, ऐतिहासिक आधार के बावजूद बहुत सुविधाजनक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि दोनों काल-खंड काफ़ी विस्तृत हैं। अत: यह विभाजन इतिहास के साथ पैदा होने वाली काव्य-प्रवृत्तियों की स्थूल जानकारी ही प्रदान कर सकता है, जो कि बहुत गहरी पड़ताल के लिए अनुपयुक्त सिद्ध होता है।

''साहित्य और कलाओं की चर्चा करते हुए प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक किस्तोफर कॉडवेल ने उन्हें समाज-रूपी सीपी से उत्पन्न मोती की संज्ञा दी है।''[10] इसका अर्थ यह निकलता है कि साहित्य में तत्कालीन सामाजिक हलचलों के कलात्मक चित्र विद्यमान होते हैं। उन चित्रों का सूक्ष्म अध्ययन तभी हो सकता है, जब हम इतिहास को खंडों में विभाजित करके चित्रों को बड़ा कर लें, अत: पूर्व में विद्वानों द्वारा किए गए विभाजनों को सम्मान देते हुए निम्नांकित इतिहास-आधारित विभाजन को देखने का मैं विनम्र आग्रह करता हूँ, ताकि लिखित-प्रकाशित कविता के बीच पं. सुन्दरलाल शर्मा को समझा जा सके।

अ. प्रारंभिक काल (1904 से 1920 तक)

ब. प्रथम विकास-काल (1921 से 1947 तक)

(स्वतंत्रता-आंदोलन और छत्तीसगढ़ी कविता)

स. द्वितीय विकासकाल (1948 से 1970 तक) स्वतंत्रता के पश्चात् की कविता

द. तृतीय विकास-काल (1971 से आज तक) समकालीन छत्तीसगढ़ी कविता

प्रारंभिक काल :

बीसवीं सदी के पूर्व छत्तीसगढ़ी कविता मुद्रित रूप में नहीं मिलती है। सन् 1904 में पं.लोचन प्रसाद पाण्डेय की कविता सामने आती है और मुद्रित-प्रकाशित छत्तीसगढ़ी कविता का इतिहास शुरू होता है। इस शुरुआत के पीछे राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय स्तर पर घटित घटनाएँ, उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध की विफल जनक्रांति को सफल रूप में देखने की जन-मानसिकता तथा धर्म-प्रवर्तकों और संत कवियों द्वारा मत-प्रचारार्थ लोक-विचार-माध्यमों के प्रभावशाली प्रयोगों की सफलता निश्चित ही कारण रूप में रही होगी। इस क्षेत्र में कबीरदास का व्यापक प्रचार-प्रसार भी छत्तीसगढ़ी भाषा-माध्यम के कारण संभव हुआ था। यदि बीसवीं सदी के प्रारंभिक दौर में छत्तीसगढ़ क्षेत्र के कवियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन को तेज़ करने और क्षेत्र की जनता में जागरण पैदा करने के लिए छत्तीसगढ़ी भाषा का प्रयोग किया, तो वह सहज और युगानुकूल प्रयोग था।

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में अनेक ऐसी घटनाएँ घटीं, जिनका राष्ट्रीय स्तर पर स्थायी महत्व है। सन् 1919 की रूसी साम्यवादी क्रांति ने अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर वैचारिक आन्दोलन को जन्म दिया, जिससे हमारे देश का राष्ट्रीय आन्दोलन भी प्रभावित हुआ। अत: हम बीसवीं सदी की शुरुआत से सन् 1920 तक के इतिहास-खंड को नव बीजारोपण का काल कह सकते हैं।

यदि राष्ट्रीय स्तर पर घटी घटनाओं का आकलन करें, तो पता चलता है कि "उन्नीसवीं सदी के अंत में भारत एक जटिल राजनीतिक चित्र प्रस्तुत कर रहा था। राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्ष की एक नयी अवस्था का सभारंभ हो रहा था।"[11] इतिहास गतिशील होता है, अत: घटित घटनाओं का प्रभाव किसी दशाब्दी की सीमा पर आकर रुक नहीं जाता, अगली दशाब्दी में दूर तक चला जाता है।

सन् 1857 की जनक्रांति की विफलता की स्वर्णजयंती ब्रिटेन में सन् 1907 में मनाई गई, जिसका जबरदस्त विरोध भारत में हुआ था। फलस्वरूप सारे देश में राष्ट्रीयता

की लहर-सी उठी थी। इससे पूर्व सन् 1905 में बंग-भंग के खिलाफ़ सारा देश एक जुट हो गया था। इन आन्दोलनों से यह क्षेत्र अप्रभावित नहीं रहा होगा। 'यह क्षेत्र प्रारंभ से ही अनेक राजनीतिक हलचलों का केन्द्र रहा है और देश में गाँधी-युग के विधिवत सूत्रपात के पहले भी यहाँ असहयोग तथा सत्याग्रह के सिद्धान्तों पर आधारित अनेक आन्दोलन हुए हैं।'[12]

छत्तीसगढ़ में राजनैतिक चेतना के प्रथम प्रकाश वाहक थे- पं.माधवराव सप्रे। उन्होंने रायपुर में 'आनंद समाज' नामक संस्था को सन् 1900 में जन्म देने की प्रेरणा दी, जिसका उद्देश्य जनता में राष्ट्रीयता और देश-प्रेम की ज्योति जागृत करना था। इसी उद्देश्य से सप्रे जी ने 1900 में 'छत्तीसगढ़-मित्र' का संपादन-प्रकाशन प्रारंभ किया।[13] राष्ट्रीयता की इस लहर का ही परिणाम था कि सन् 1904 में पं.लोचन प्रसाद पाण्डेय की कविता सामने आई, जिसमें क्षेत्र की जनता को जगाने का प्रयास दिखाई देता है।

''सुतत हवव नींद के मारे
हाड़ा बटौना लेगे कोड़।''

सन् 1906 और 1907 का काल इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण घटनाओं का काल रहा है। इसी काल में स्वदेशीपन की भावना लोगों के अंदर भावुकता-जन्य न होकर विचार-जन्य बनी। इस क्षेत्र के नेताओं ने स्वदेशी विचारों का फैलाने के लिए स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग पर बल दिया। 'सन् 1906 में ठाकुर प्यारे लाल सिंह ने राजनांदगाँव में स्वदेशी आंदोलन का श्रीगणेश किया।'[14] सन् 1907 में पं. सुन्दरलाल शर्मा ने अनेक स्थानों में स्वदेशी भंडारों की स्थापना की। इसी सन् में गरम दल के नेता लोकमान्य तिलक का आगमन छत्तीसगढ़ के बिलासपुर में हुआ और सन् 1907 में ही 'प्रांतीय राजनीतिक परिषद रायपुर में आयोजित की गई, जिसके स्वागताध्यक्ष हरिसिंह गौर थे। यहाँ कांग्रेस के भीतर गरमदल और नरमदल का संघर्ष पहली बार उभर कर आया।'[15]

छत्तीसगढ़ क्षेत्र में राष्ट्रीय आन्दोलन धीरे-धीरे ज़ोर पकड़ता जा रहा था। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन का प्रभाव भी इस क्षेत्र में बढ़ रहा था। ''सन् 1916-17 में जब गाँधी जी ने बिहार प्रान्त के चम्पारन के किसानों के प्रसिद्ध सत्याग्रह का नेतृत्व किया, तब उन्हीं दिनों पं. सुन्दरलाल शर्मा ने सिहावा के दुर्गम वन तथा कंदराओं को अपनी राजनैतिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बनाया। वहाँ के आदिवासियों को संगठित कर उन्होंने जंगल विभाग, पुलिस विभाग के शोषण दमन चक्र और अत्याचार

के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन का श्रीगणेश किया।"[16]

सन् 1920 तक यह समूचा क्षेत्र गाँधी जी के असहयोग-आन्दोलन से आन्दोलित हो गया। सन् 1920 में इस क्षेत्र में दो बड़ी घटनाएँ घटीं। प्रथम, जनवरी 1920 में- "ठा. प्यारेलाल के नेतृत्व में राजनांदगाँव के मिल मज़दूरों ने 37 दिनों की लम्बी हड़ताल कर अँग्रेज अधिकारियों की सत्ता को चुनौती दी। डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र के अनुसार यह देश की पहली लम्बी हड़ताल थी।"[17] द्वितीय, अँग्रेज़ी हुकूमत ने धमतरी के समीप कंडेल ग्राम के ग्रामीणों पर नहर का पानी चुराने का आरोप लगाया था। "इस घटना ने देश-प्रसिद्ध 'कंडेल नहर सत्याग्रह' को जन्म दिया, जो जुलाई सन् 1920 से दिसम्बर सन् 1920 तक पं. सुन्दरलाल के नेतृत्व में चलता रहा।"[18] बाबू छोटे लाल श्रीवास्तव इस आन्दोलन के प्रमुख नेता थे। इस सत्याग्रह के मार्ग-दर्शन के लिए पं. सुन्दरलाल शर्मा को सत्याग्रह-आन्दोलन के जनक गाँधीजी के पास कलकत्ता भेजा गया। गाँधीजी- "पं. सुन्दरलाल शर्मा के साथ 20 अथवा 21 दिसंबर 1920 को कलकत्ता से रायपुर पधारे।"[19] धमतरी के कंडेल ग्राम पहुँचने से पहले ही वहाँ के सत्याग्रह का निर्णय आन्दोलनकारियों के पक्ष में हो चुका था। यह सत्याग्रहियों की ज़बरदस्त विजय थी।

लगभग बीस वर्षों की प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख आवश्यक था, क्योंकि देश अथवा क्षेत्र की हलचलों का प्रभाव रचनाशीलता पर पड़ता ही है। कलाएँ इतिहास-सापेक्ष होती हैं। वे इतिहास के समान्तर चलती हुई उसे प्रभावित करती हैं और स्वयं उनसे प्रभावित होती हैं।

यद्यपि इस इतिहास-खंड में छत्तीसगढ़ी कविता में उल्लेखनीय अभिवृद्धि हुई, तथापि 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' जैसी ऐतिहासिक रचना भी लिखी गई। इस खंडकाव्य का इतिहास, संस्कृति और भाषा की दृष्टि से आज भी महत्त्व है। छत्तीसगढ़ी कविता के इस काल में पं. सुन्दरलाल शर्मा को छोड़ अन्य कवियों पर छत्तीसगढ़ी कविता में हिन्दी के शब्दों को खपाने का आरोप लगाया जाता है, किन्तु यह प्रवृत्ति आठवें दशक के कवियों में भी दिखाई देती है। अत: हिन्दी के शब्दों को खपाने के आरोप से छत्तीसगढ़ी के रचनाकार आज भी पूरी तरह मुक्त नहीं है। पं.लोचन प्रसाद पाण्डेय उस दौर के छत्तीसगढ़ी के कवि हैं, जब काव्य के क्षेत्र पर ब्रज और खड़ी बोली हिन्दी का भरपूर दबाव था। ऐसे वक़्त में छत्तीसगढ़ी की मुद्रित कविता का सामने आना एक आश्चर्य-मिश्रित सुखद घटना ही है। साथ ही, क्षेत्रीय-विचार-माध्यम में साहित्य-

सृजन निश्चित ही साहसिक कदम था। "श्री पाण्डेय जी ने गीता का छत्तीसगढ़ी में अनुवाद किया था, पर वह पूरा नहीं हुआ।"[20] जिसे उन्होंने 'छत्तीसगढ़ी गीता प्रवेश' नाम दिया था और "संभवत: यह 1910 के आसपास की बात है।"[21]

इस काल-खंड में कविताएँ कम ही लिखी गईं, किन्तु छत्तीसगढ़ी के रचनाकार छत्तीसगढ़ी भाषा की सर्जनात्मक शक्ति के प्रति आश्वस्त होने लगे थे। पं. सुन्दरलाल शर्मा का 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' नामक खण्डकाव्य इस बात का प्रमाण है। शर्मा जी ने उक्त खण्डकाव्य की रचना सन् 1912 में कर ली थी, किन्तु उसका प्रकाशन सन् 1913 में ही हो पाया। सन् 1924 तक उसके तीन संस्करण निकले। इसे "पं. अंबिका प्रसाद बाजपेयी द्वारा 159 बी, मछुआ बाजार स्ट्रीट, द इंडियन नेशनल प्रेस- स्वतंत्र में मुद्रित किया गया है। इसमें मात्र 24 पृष्ठ हैं।"[22] "गोकुलप्रसाद ने 'रायपुर-रश्मि' में स्व. शर्मा जी की 'दानलीला' को छत्तीसगढ़ी भाषा का प्रथम पद्यात्मक ग्रंथ बताया है।"[23] यह एक ऐसी कालजयी रचना है कि जिसका आज भी इतिहास, संस्कृति और भाषा की दृष्टि से ही नहीं, वरन् राष्ट्रीय आन्दोलन और सामाजिक जागरण की दृष्टि से भी महत्व है। "यदि भाषा और विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' को प्रतिमान मानकर आधुनिक छत्तीसढ़ी लेखकों की रचनाओं पर दृष्टिपात किया जाए, तो हमें अत्यधिक निराशा होगी तथा बहुत कम कवि ऐसे होंगे, जिन्हें हम कवि के रूप में स्वीकार कर सकेंगे। 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' में ही अनेक ऐसे भावोद्वेलनकारी और मनोहारी प्रसंग हैं, जो भाषा के अर्थवहन की गंभीर क्षमता को प्रकट करते हैं।"[24]

"मैं गोई ! अब कोन उपाय करौं।
के कहूँ दहरा बीच डूब मरौं।
मोला कोनो उपाय नई सूझत हे।
ये गोई ! गोदना अस गूदत हे।"[25]

चूँकि पुस्तिका (छत्तीसगढ़ी दानलीला) गुलामी के ज़माने की है, अत: इसमें कृष्ण और गोपियों के स्वरूप में दूसरे किस्म की विशेषताएँ मिलती हैं। इस खण्ड-काव्य का कृष्ण ठेठ ग्रामीण किशोर या युवक है। एक तरफ़ वह रसिक लगता है, तो दूसरी तरफ अत्याचारी शासन से टकराने की हिम्मत रखनेवाला ग्रामीण युवक।[26] "राष्ट्रीय स्तर पर सामंती अवशेषों द्वारा शोषण- तब व्यवस्था की यही स्थिति थी। ऐसे में शर्मा जी को ऐसे चरित्र की आवश्यकता थी, जो इस शोषक कंस-व्यवस्था के खिलाफ़ पूरी हिम्मत के साथ सक्रिय हो सके और जो ग्रामीणों को न केवल पारम्परिक

सोच के तहत अपना मुक्तिदाता लगे, वरन् सांस्कृतिक सोच और ग्रामीण परिस्थितियों के मुताबिक भी वह अपने ही बीच का आदमी लगे।''[27] देश को गुलामी की ज़ंजीरों से मुक्त कराने के लिए जिस ऊर्जा की आवश्यकता थी, वह इस काव्य में पूर्ण रूप से उपस्थित है। इस तरह इस खण्डकाव्य में कवि की काल-सापेक्ष रचना-धर्मिता और उसकी आकांक्षाएँ ध्वनित होती हैं। शर्मा जी ने मिथक का जिस तरह सार्थक प्रयोग किया है, वह छत्तीसगढ़ी साहित्य में बहुत कम ही देखने को मिलता है। डॉ. नरेन्द्र देव वर्मा ने इस खण्डकाव्य को ''अर्थवहन की क्षमता को प्रकट करने वाला''- कहा है। यह एकदम सही लगता है। उदाहरण के तौर पर निम्न पंक्तियाँ ली जा सकती हैं-

''खरिखा में लरिका लिए,
देखेंव नन्द किसोर।
चरखा सरिख तभिज ले,
गिंजरत हे मन मोर।''[28]

यद्यपि उपर्युक्त पंक्तियों में गोपिका के मन की हलचल ज्ञात होती है, किंतु यदि शब्दों पर ध्यान दें, तो कुछ नयी बातें खुलती हैं। ''देशी कच्चे माल के सस्ते दामों पर निर्यात और विदेशों से तैयार माल के आयात ने कुटीर उद्योगों को नष्ट कर दिया था। गाँवों की आर्थिक दशा बिगड़ चुकी थी। इस परिस्थितिजन्य चिन्ता ने तत्कालीन रचनाकारों को कुटीर एवं लघु उद्योगों के प्रति सोचने के लिए बाध्य कर दिया था। यह 'चरखा' नष्ट-प्राय कुटीर उद्योग का प्रतीक है .... तो 'गिंजरत हे मन मोर' में कवि की ओर से जो चिन्ता व्यक्त की गई है, वह देश का तत्कालीन ध्वस्त आर्थिक-व्यवस्था का परिणाम है।''[29] सन् 1906 से ही पं.सुन्दलाल शर्मा स्वदेशी आन्दोलन से जुड़े हुए थे। इसका प्रभाव भी उस खंड-काव्य पर पड़ा था। तत्कालीन परिस्थितियों में भी राष्ट्रीय एकता के लिए गाँधीजी ने हरिजन-उद्धार पर विशेष बल दिया था। अपने छत्तीसगढ़ के दौरे पर उन्होंने अपने व्याख्यान में स्वीकार किया था कि उक्त आन्दोलन के लिए पं.सुन्दलाल शर्मा उनके गुरु हैं। हरिजन-उद्धार की ओर विशेष ध्यान देने के कारण भी शर्मा जी सुवर्णों द्वारा 'चमरा-ब्राह्मण' भी कहे गए। इस खंडकाव्य में उनके जाति-विरोधी विचार स्पष्ट हैं -

''जात-पाँत में सबो बरोबर
न अय गोई घाट कोनो हर।''[30]

या

" देखे बिन नन्दलाल के, अब तो रहि न जाय।
जात-सगा डर छाँड़ के, धरिहौं मोहन पाय।"[31]

इस तरह 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' में स्व. शर्मा ने तत्कालीन परिदृश्य में घटित घटनाओं से प्राप्त अनुभवों को कलात्मक स्वरूप प्रदान किया है। उस खंडकाव्य के स्थूल अर्थ को ग्रहण करने वाला पाठक न तो उस युग के इतिहास को पकड़ पाएगा और न ही उस चेतना को, जो उस खंडकाव्य में उपस्थित है। श्री हरिठाकुर ने छत्तीसगढ़ी कविता के लिए जीवन तैयार करने वाले वरिष्ठ कवियों में पं.सुन्दलाल शर्मा और जमुना प्रसाद यादव का नामोल्लेख किया है। "शर्मा जी ह दानलीला अउ यादव जी ह श्याम-संदेश पुस्तक लिख के ये सिद्ध कर देइन कि छत्तीसगढ़ी म घलो प्रबंध-काव्य लिखे जा सकत हे, एखर संभावना है।"[32] छत्तीसगढ़ी के वरिष्ठ कवि स्व. हेमनाथ यदु की डायरी से ज्ञात होता है कि सन् 1913 में बैजनाथ प्रसाद ने दानलीला और सन् 1920 में दलपतसिंह ने 'रामयश मनोरंजन' का सृजन किया था। पं.सुन्दलाल शर्मा ने सन् 1916 में 'सतनामी भजन माला' और 'छत्तीसगढ़ी मनोरंजन' का सृजन किया था। पं.सुन्दलाल शर्मा ने सन् 19168 में 'सतनामी भजन माला 'और 'छत्तीसगढ़ी रामायण' की रचना की। छत्तीसगढ़ी रामायन 'छत्तीसगढ़ की विशिष्ट ग्रामीण संस्कृति और सभ्यता को समेटे हुए है तथा काव्यात्मक औदात्य के गुण इसमें भरे पड़े हैं। दुर्भाग्य से अप्रकाशित रहने के कारण यह ग्रंथ विशेष प्रसिद्ध नहीं हो पाया है।"[33]

छत्तीसगढ़ी में अनुवादकार्य भी हुआ है। सन् 1918 में पं. शुकलाल प्रसाद पांडे की पुस्तक 'भूल-भुलैया' या 'पुरूझुरू' प्रकाश में आई। शेक्सपीयर की पुस्तक 'कॉमेडी ऑफ़ एरर्स' का छत्तीसगढ़ी अनुवाद इन्हीं नामों से हुआ था। पांडे जी द्वारा रचित 'गीया' का प्रकाशन सन् 1920 में हुआ। 'भूल-भुलैया' में पं. शुकलाल प्रसाद पांडे ने हास्य को प्राथमिकता दी है। वे कहते हैं-

निच्चट हासे बर चाहे जेहर,
ये किताब बाँचे तहर।[34]

कवि द्वारा ग्राम्य रुचियों का भी सजीव चित्रण किया गया है-

"हम नइ होवन पंडित-संडित, तहीं पढ़ेकर आग-लुवाठ
ये किताब अउ गजट-सजट ला जीभ लमाके तही ह चॉट।"[35]

सन् 1904 से 1920 तक प्रकाशित रचनाओं में 'छत्तीसगढ़ी दानलीला'

सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तक मानी जाती है। इन दो दशकों की कविताओं को देखें, तो उनमें भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति झुकाव, हरिजन-उद्धार की भावना, जनजागरण, अँग्रेज़ी सरकार द्वारा हर स्तर पर शोषण और इस शोषण के प्रति विरोध की मानसिकता आदि बातें दिखाई देती हैं। इस काल की रचनाशीलता पर पं.सुन्दलाल शर्मा का ही प्रभाव है। साथ ही मध्यकालीन धार्मिकता की छाप भी कविताओं में देखी जा सकती है।

प्रथम विकास-काल -

सन् 1921 से सन् 1947 तक का काल बहुत ही उथल-पुथल का रहा है। आज़ादी की लड़ाई तेज़ हो चुकी थी। सन् 1920 तक छत्तीसगढ़ क्षेत्र में जन-जागृति भरपूर हो चुकी थी, जिसके कई उदाहरण 'प्रारंभिक काल' में दिए जा चुके हैं।

दिसम्बर, सन् 1920 में नागपुर में काँग्रेस का अधिवेशन हुआ। 'कंडेल नहर-आन्दोलन' की सफलता की खुशी से भरे हुए छत्तीसगढ़ के सभी नेताओं ने असहयोग आन्दोलन के प्रस्ताव को अपनी स्वीकृति दी। "महात्मा गाँधी जी के आह्वान पर ठा.प्यारेलाल सिंह ने अपनी वकालत का परित्याग कर दिया। पं.वामनराव लाखे ने अपनी 'राय-साहब' की पदवी को ठोकर मार दी।"[36]

यदि सन् 1921 से 1947 तक की घटनाओं को देखें, तो लगता है- छत्तीसगढ़ आज़ादी की लड़ाई में देश के किसी भी हिस्से से पीछे नहीं था। सन् 26 वर्षों में अनेक महत्वपूर्ण आन्दोलन हुए। काँग्रेसी विचारधारा के अतिरिक्त एक नयी विचारधारा भी युवकों में प्रवाहित होने लगी थी। वह थी- साम्यवादी विचारधारा। पिछले दशक के रूस से घटी घटना का प्रभाव अब देश में स्पष्ट दिखाई देने लगा था। सन् 1924 में सतनामी आश्रम की स्थापना, सन् 1926 में रायपुर-बिलासपुर में छात्र-संगठन की स्थापना, सन् 1930 में स्थानीय स्तर पर नमक-सत्याग्रह करके राष्ट्रीय आन्दोलन को समर्थन, तमोरा और रुद्री नवागाँव का जंगल-सत्याग्रह, उपेक्षित-शोषित सतनामी लोगों की सत्याग्रह में भागीदारी, करबंदी-आन्दोलन के अंतर्गत 'लगान मत दो, पट्टा मत लो' के नारे के साथ किसान आन्दोलन की शुरुआत, सत्याग्रह-आन्दोलन में महिलाओं का प्रवेश, सन् 1933 में छत्तीसगढ़ में महात्मा गाँधी द्वारा हरिजनोद्धार कार्यक्रम, सन् 1942 में भूमिगत आन्दोलनकारियों द्वारा सशस्त्र क्रांति की योजना तथा हिन्दुस्तानी लालसेना के भूमिगत कार्य आदि महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दृश्य हैं।

इन राष्ट्रीय आन्दोलनों और क्षेत्रीय जागरण के बीच जिन कविताओं की रचना

हुई, उनमें ये सारे दृश्य कहीं सूक्ष्मता के साथ, तो कहीं स्थूलता के साथ परिलक्षित होते हैं। पं.सुन्दलाल शर्मा के बाद जिन कवियों का नाम आता है, वे हैं- जगन्नाथ प्रसाद भानु, कपिलनाथ मिश्र और शुकलाल प्रसाद पांडे। स्व. कपिलनाथ मिश्र की कृति 'खुसरा चिरई के बिहाव' ने विशेष लोक-प्रियता अर्जित की। "इस पुस्तिका का पहला संस्करण नौ महीने में समाप्त हो गया था तथा सन् 1921 ई. में इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ।"[37] यद्यपि इस पुस्तिका में अन्न, वृक्ष, पक्षी आदि की लम्बी सूची हास्यरस के अंतर्गत दी गई है, तथापि कुछ अन्य बातों के कारण यह पुस्तिका सुविज्ञ पाठकों का ध्यान आकर्षित करती है। स्वतंत्रता-आन्दोलन के काल में लिखी रचनाएँ विशिष्ट पड़ताल की माँग करती हैं। यहाँ ऐसे सूक्ष्म दृश्य मिलते हैं, जो संदर्भित विषय के आवरण में छिपे होते हैं। उदाहरण के तौर पर 'खुसरा चिरई के बिहाव' की ये पंक्तियाँ रखी जा सकती हैं -

"पूँजी हर तो सबे गँवागे, अब काकर मूँ तक्का।
टुटहा गाड़ा एक बचे हे, ओकरो नइ हे चक्का।
लागा दिन-दिन बाढ़त जाथे, साव लगाथे धक्का।
दिन दुकाल ऐसन लागे हे, खेत परे हे सुक्खा।
लोटिया-थारी सबो बेचागे, माई-पिल्ला भुक्का।
छितका कुरिया कइसन बचि हे, अब तो छूटिस छक्का।
आगा नगाथे, पागा नगाथें, और नगाथें पटका।
जो भगवान करे, सो होहो, जल्दी इहाँ ले सटका।"[38]

जब शहरों में अपनी आजादी को लेकर आम जनता आन्दोलित थी, तब गाँवों की हालत उपर्युक्त पंक्तियों से अलग नहीं थी। गाँवों की पूँजी नष्ट हो रही थी, साहूकारों के कर्ज का बोझ ग्रामीणों पर बढ़ता ही जा रहा था, भुखमरी फैल रही थी और खेतों में सूखा पड़ रहा था। लोगों को अपना घर-द्वार बचाना मुश्किल पड़ रहा था। विदेशी पूँजीवादी सरकार के शोषण-चक्र द्वारा 'आबा नगाथें, पागा नगाथें' की स्थिति पैदा हो गई थी।

सन् 1924 में पं.सुन्दलाल शर्मा की 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' का तृतीय संस्करण सामने आया। इसमें व्यवस्था के प्रति असहयोग की भावना स्पष्ट थी। सन् 1927 के आसपास पं.लोचनप्रसाद पाण्डेय की पुस्तक 'भुतहा मंडल' और सन् 1924 में ही गोविन्दराव विट्ठल की 'नागलीला', सन् 1935 में गिरवर दास वैष्णव की 'छत्तीसगढ़ी

सुराज' प्रकाश में आई। "छत्तीसगढ़ी सुराज" पर तत्कालीन आन्दोलनों का प्रभाव है। राजनीतिक हलचलों के आधार पर लिखी जाने वाली कृतियों में 'छत्तीसगढ़ी-सुराज' का अपना विशेष स्थान है। इस पुस्तक की प्राय: सभी रचनाएँ राजनीतिक मतवादों का परिदर्शन कराते हुए महात्मा गाँधी की नीति की वरीयता सिद्ध करती हैं।"[39] लोकप्रिय कवि स्व. हेमनाथ यदु की डायरी से ज्ञात होता है, कि सन् 1936 में नर्मदा प्रसाद दुबे की 'दानलीला' सन् 1934 में जमुना प्रसाद यादव का प्रबंध काव्य 'श्याम-संदेश' और सन् 1938 में पुरुषोत्तम लाल की पुस्तक 'कांग्रेस आल्हा', सन् 1940 में जगन्नाथ भानु की 'मातेश्वरी सेवा के गुटका' किशन लाल ढोटे की पुस्तक 'लड़ाई के गीत' प्रकाश में आई। पं.सुन्दलाल शर्मा की 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' की लोकप्रियता से प्रभावित होकर अनेक 'लीलाओं' की रचना की गई। उन्हीं लीलाओं में नागलीला, दानलीला भी है।

"सन् 1921 में प्रथमबार गाँधीजी द्वारा निर्मित कांग्रेस विधान के अनुसार रायपुर जिला कांग्रेस का गठन किया गया।"[40] और "सन् 1933 के नवम्बर माह में महात्मा गाँधी हरिजन उद्धार के कार्यक्रम को लेकर छत्तीसगढ़ के दौर पर आये।"[41] इससे पूर्व काँग्रेस के नेतृत्व में अनेक आन्दोलन हो चुके थे। उदाहरण के तौर पर नमक-सत्याग्रह, जंगल-सत्याग्रह, करबन्दी-आन्दोलन आदि। काँग्रेस के कार्यक्रमों के प्रभाव से सन् 1938 में पुरुषोत्तम लाल की पुस्तक 'काँग्रेस आल्हा' प्रकाश में आई। द्वितीय विश्व युद्ध ने भी कवियों पर प्रभाव डाला। "किशन लाल ढोटे ने द्वितीय विश्व युद्ध काल में 'लड़ाई के गीत' की रचना करके युवकों को युद्ध में भाग लेने के लिए उत्साहित किया था।"[42]

स्व. द्वारिका प्रसाद तिवारी विप्र की किताब 'कुछु काँहीं' का प्रकाशन सन् 1940 में हुआ।[43]

आज़ादी के पहले आन्दोलन की उथल-पुथल के बीच सर्वाधिक जोशीले कवि के रूप में स्व. कुंज बिहारी चौबे का नाम आता है। "स्व. चौबे जी में इस बात की प्रबल भावना थी कि भारतमाता की परतंत्रता के बंधन तुरन्त छिन्न-भिन्न किए जाएँ। यह भावना किसी भावुक की नहीं, बल्कि साहसी क्रांतिकारी, क्रियाशील युवक की भावना थी।"[44] तब वे न केवल साहित्य और राजनीति के माध्यम से अँग्रेजी सरकार के टकरा रहे थे, वरन् पं.सुन्दलाल शर्मा की तरह "अपने साहित्य के साथ ही व्यवहार में भी हरिजन-सवर्णों के बीच का रोटी का बंधन"[45] भी तोड़ रहे थे। जेल-

जीवन में भी उन्होंने अनेक रचनाओं की सर्जना की-

"चिथरा पहिरथन, कथरी दसाथन,
पेज पसिया ल पी के अघाथन।
चिरहा कमरा अउ टुटहा खुमरी में,
घिलर-घिलर के कमाथन जी।
हमरे रकत ला चुहके रे गोरा,
लाल करे अपन अंग ला।
अँग्रेज तै हमला बनाये कंगला।"[46]

"तत्कालीन जनभावना का जैसा यथार्थ आकलन कुंजबिहारी चौबे की अत्यल्प छत्तीसगढ़ी रचनाओं और गिरवर दास वैष्णव के 'छत्तीसगढ़ी सुराज' की रचनाओं में हुआ है, वैसा अन्य कवियों से नहीं सध सका है। कुंजबिहारी चौबे का कृतित्व सर्वाधिक विलक्षण और अद्बितीय है।"[47] युगीन इतिहास के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने वाली रचनाओं के आधार पर स्व. कुंज बिहारी चौबे को प्रथम विकासकाल का सर्वाधिक प्रतिभा-सम्पन्न रचनाकार कहा जा सकता है-"जिन्हें जीवन में कभी भी अनुकूल वातावरण और परिस्थितियाँ नहीं मिलीं, जिनमें अद्बितीय प्रतिभा, साहस, क्रांति का भाव, त्याग-तपस्या की साधना थी, परन्तु अल्पायु के कारण उनका उपयोग न हो सका।"[48] श्री देवी प्रसाद वर्मा ने 'छत्तीसगढ़ी गीत अउ कविता' की भूमिका में लिखा है- "कुंजबिहारी चौबे छत्तीसगढ़ी के पहले कवि हैं, जिनकी कविताओं में राजनीतिक विद्रोह का स्वर प्रज्वलित हुआ था।"[49] उनमें सर्वाधिक चेतना ही नहीं, वर्ग-दृष्टि भी थी। उनकी कविताओं में शोषित-पीड़ित के प्रति झुकाव स्पष्ट दिखाई देता है। इसे हम तत्कालीन परिस्थिति में युवकों के विद्रोह का विस्फोट मात्र नहीं कह सकते। पं.सुन्दलाल शर्मा ने पीछे आने वाली पीढ़ी के लिए एक ऐसी ज़मीन तैयार कर दी थी, जिस पर देशी और विदेशी काली-शक्तियों के समक्ष सिर उठाकर खड़ा हुआ जा सके। तात्पर्य यह कि पं. शर्मा के आन्दोलनकारी और रचनाशील मन ने समकालीनों और पश्चकालीनों के साथ एक लम्बी यात्रा की है। यदि सन् 1947 तक के काल को 'शर्मा-युग' कहा जाए, तो छत्तीसगढ़ी कविता यात्रा के विकास को ठीक-ठीक समझा जा सकता है।

संदर्भ-तालिका :

1. छत्तीसगढ़ी दानलीला एक समीक्षा/ लेखक विजय कुमार थवाईत, सं. चित्तरंजन कर.
2. वही, लेखक भुवनलाल मिश्र, वही.
3. छत्तीसगढ़ी भाषा का उद्‌विकास/डॉ. नरेन्द्रदेव वर्मा, 103.
4. वही.
5. छत्तीसगढ़ी दानलीला एक समीक्षा/लेखक भुवनलाल मिश्र, सं. डॉ. चित्तरंजन कर.
6. छत्तीसगढ़ में राष्ट्रीय जागरण के प्रणेता/श्रीमती एस. मिश्र, 1966.
7. छत्तीसगढ़ी भाषा का उद्‌विकास/ डॉ. नरेन्द्रदेव वर्मा, 104.
8. वही.
9. छत्तीसगढ़ी साहित्य और साहित्यकार/डॉ.विनयकुमार पाठक, 50.
10. साहित्य और सामाजिक संदर्भ/शिवकुार मिश्र, 10.
11. भारत का इतिहास : प्रगति प्रकाशन मास्को, 412.
12. मध्यप्रदेश और गाँधीजी/सूचना तथा प्रकाशन संचालनालय, 09.
13. दैनिक नवभारत/25 सि. 1985, स्व. हरिठाकुर
14. वही.
15. वही
16. वही/12 सि. 1992.
17. वही/25 सि. 1985.
18. वही/ 12 सिं. 1992, भुवनलाल मिश्र
19. मध्यप्रदेश और गाँधी जी/सूचना तथा प्रकाशन संचालनालय, 10.
20. छत्तीसगढ़ का साहित्य और उसके साहित्यकार, डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त, 26.
21. छत्तीसगढ़ी गीत अउ कविता/हरि ठाकुर, भूमिका-देवीप्रसाद वर्मा..
22. छत्तीसगढ़ी दानलीला एक समीक्षा/लेखक पुरुषोत्तम अनासक्त, सं. डॉ.चित्तरंजन कर.
23. वही/लेखक-भुवनलाल मिश्र.
24. छत्तीसगढ़ी भाषा का उद्‌विकास/डॉ. नरेन्द्रदेव वर्मा, 103.
25. छत्तीसगढ़ी दानलीला एक समीक्षा/परिशिष्ट-1, सं. डॉ.चित्तरंजन कर.
26. मड़ई-1991/लेखक- जीवन यदु, सं. उमाशंकर यादव.

27. वही.
28. छत्तीसगढ़ी दानलीला एक समीक्षा/परिशिष्ट-1, सं. डॉ.चित्तरंजन कर.
29. मड़ई-1991/लेखक- जीवन यदु, सं. उमाशंकर यादव.
30. छत्तीसगढ़ी दानलीला एक समीक्षा/परिशिष्ट-8, सं. डॉ. चित्तरंजन कर.
31. वही.
32. पसर भर अँजोर/सं. हेमनाथ यदु, भूमिका- हरि ठाकुर.
33. छत्तीसगढ़ी भाषा का उद्विकास/डॉ. नरेन्द्रदेव वर्मा, 104.
34. भूल-भूलैया/शुकलाल प्रसाद पांडे.
35. वही.
36. नवभारत रायपुर/25 सि. 1985, हरि ठाकुर.
37. छत्तीसगढ़ी भाषा का उद्विकास/डॉ. नरेन्द्रदेव वर्मा, 104.
38. खुसरा चिरई के बिहाव/कपिलनाथ मिश्र, 29.
39. छत्तीसगढ़ी भाषा का उद्विकास/डॉ. नरेन्द्रदेव वर्मा, 105.
40. दैनिक नवभारत रायपुर/25 सित. 1985, लेखक- हरि ठाकुर.
41. वही.
42. छत्तीसगढ़ी भाषा का उद्विकास/डॉ. नरेन्द्रदेव वर्मा, 105.
43. स्व. हेमनाथ यदु की व्यक्तिगत डायरी (बसंत यदु के सौजन्य से).
44. छत्तीसगढ़ का साहित्य और उसके साहित्यकार/डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त, 74.
45. छत्तीसगढ़ में सांस्कृतिक चेतना का विकास/डॉ. अशोक शुक्ल, 34.
46. छत्तीसगढ़ का साहित्य और उसके साहित्यकार/डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त, 76.
47. छत्तीसगढ़ी भाषा का उद्विकास/डॉ.नरेन्द्रदेव वर्मा, 104.
48. छत्तीसगढ़ का साहित्य और उसके साहित्यकार/डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त, 74.
49. छत्तीसगढ़ी गीत अउ कविता/हरि ठाकुर, भू.- देवीप्रसाद वर्मा.

छत्तीसगढ़ का एक्टिविस्ट कवि

■ रमाकांत श्रीवास्तव

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महात्मा गाँधी ने कहा था कि- दुनिया को खबर कर दो कि गाँधी अँग्रेज़ी नहीं जानता। वस्तुतः स्वाधीनता और स्वदेशी की अवधारणा का विस्तार भाषा के प्रति हमारे व्यवहार तक फैला हुआ है। बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों में स्वाधीनता का आंदोलन विराट जन-आंदोलन का स्वरूप ग्रहण कर रहा था। वह नवजागरण का उषाकाल था, जिसके आलोक में राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक क्षेत्रों में नवीन विचारों की हल-चल मूर्त हो रही थी। हिन्दी प्रदेश की साहित्यिक गतिविधियों पर यदि हम दृष्टिपात करें, तो विषयवस्तु और भाषा के स्तर पर एक नई दृष्टि का उन्मेष स्पष्ट दिखलाई देता है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र के काल में रीतिकालीन प्रवृत्तियों का लगभग अवसान हो चुका था। काव्य-परंपरा के रूप में कुछ पुराने विषय तब भी अस्तित्व में थे, किन्तु कवि-दृष्टि में परिवर्तन के कारण वस्तु के उद्देश्य में भिन्नता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

'छत्तीसगढ़ी दानलीला' पर भी एक समय अश्लीलता का आरोप लगाया गया था। रघुवर प्रसाद द्विवेदी ने तो 'हितकारिणी' पत्रिका में लेख लिख कर इस पर प्रतिबंध लगाने की माँग की थी, जब कि छत्तीसगढ़ के सामान्य पाठकों ने इसे हाथों-हाथ लिया था। माधवराव सप्रे ने 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' की अद्भुत लोकप्रियता को देखते हुए लिखा- "मैं देखता हूँ कि छत्तीसगढ़ निवासी भाइयों में आपकी इस पुस्तक का कैसा लोकोत्तर आदर है।" इस कृति का पहला संस्करण 191', में प्रकाशित हुआ। दूसरे और तीसरे संस्करण क्रमशः 1915 और 1924 में आए। इस ग्रंथ में उन्होंने अपने को सुंदर कवि कहा। जिन लोक प्रचलित गालियों का प्रयोग द्विवेदी जी को सहन नहीं हुआ, उन पर छत्तीसगढ़ के पाठकों ने कोई एतराज़ नहीं किया। लोक-जीवन में प्रचलित आंचलिक बोली के सहज प्रयोग से अपरिचित द्विवेदी जी की नागर दृष्टि ने उन्हें विचलित किया। दरअसल श्लील-अश्लील का प्रश्न जटिल है।

दानलीला का प्रकाशन 1913 में हुआ। यह महावीर प्रसाद द्विवेदी का युग था, जिसे खड़ी बोली के विकास का काल माना जाता है। कविता के लिए ब्रजभाषा की अनिवार्यता का सिद्धांत ध्वस्त हो रहा था। इसके पूर्व जॉर्ज ग्रियर्सन-जैसे भाषाविद,

भारतेन्दु-जैसे हिन्दी के समर्थक और प्रतापनारायण मिश्र-जैसे शैलीकार भी यही मानते थे कि कविता की नियति ब्रजभाषा से ही जुड़ी है। जगन्नाथ रत्नाकार-जैसे ब्रजभाषा के कवि तो यह मानते ही थे। 'जयद्रथ वध' और फिर 'भारत-भारती' की अपार लोक- प्रियता ने ब्रजभाषा- मोह को भंग किया और यह सिद्ध किया कि काव्य-रचना किसी विशिष्ट भाषा की मोहताज़ नहीं है। श्रीधर पाठक और हरिऔध-जैसे कवियों को भी ब्रजभाषा के प्रभाव से अपने को मुक्त करना पड़ा था।

भाषा के संबंध में इस तथ्य को रेखांकित करने का मक़सद यह है कि हिन्दी और ब्रजभाषा का द्वन्द्व-काल छत्तीसगढ़ी भाषा का प्रस्थान-बिन्दु है। लोचन प्रसाद पाण्डेय द्विवेदी युग के महत्वपूर्ण रचनाकार थे। मुकुटधर पाण्डेय छायावाद के प्रवर्तक कवि थे। सुंदर लाल शर्मा के लिए यह कठिन नहीं था कि वे अपनी कवित्व-शक्ति के बल पर हिन्दी के कवि के रूप में अपने को स्थापित करते। अपनी राजनैतिक-सामाजिक भूमिका में वे अखिल भारतीय ख्याति के व्यक्ति थे, अत: वे बहुत सरलता से हिन्दी के मान्य कवि का दर्ज़ा हासिल कर सकते थे, किन्तु उन्होंने अपने अंचल की बोली को परिष्कृत करने के लिए और जनसामान्य तक पहुँचने के लिए छत्तीसगढ़ी में रचना की। साथ ही उन्होंने अपने को सामाजिक कार्यों में लगाया। वे अपने समय के अत्यंत चर्चित व्यक्ति थे। अछूतोद्धार के मामले में गाँधी जी उन्हें अपना गुरु मानते थे। स्वाधीनता-आंदोलन से जुड़े महत्वपूर्ण व्यक्ति उनके त्याग और समर्पण से प्रभावित होते थे।

सुंदरलाल की नायिका राधा का मन कृष्ण-प्रेम में चरखे की तरह घूमता है और मन की पीड़ा गोंदना गोदवाने के दर्द-जैसी है। सुंदरलाल की छत्तीसगढ़ी दानलीला की विषय-वस्तु कृष्ण-भक्ति-परंपरा का विकास है, पर यह एक आधुनिक चेतना-संपन्न कवि की रचना है। उनकी राधा न तो विद्यापति की राधा है, और ना ही सूरदास की। उसका अपना एक अलग व्यक्तित्व है। वह प्रेम में अनुरक्त है, लेकिन वह मध्ययुगीन कवियों की नायिका की तरह न तो प्रेमी की भोग्या है और न ही अपने व्यक्तित्व को विसर्जित करने वाली समर्पिता। वह कई मानों में बेहद छत्तीसगढ़िया है। दानलीला की यह महत्वपूर्ण विशेषता है कि उसमें चित्रित स्त्रियों के व्यक्तित्व में इस अंचल की सुगंध उपस्थित है। वे सूरदास की गोपियों की प्रतिकृति नहीं है, बल्कि वे छत्तीसगढ़ की रौताइन हैं - केवल साज-सज्जा में नहीं बल्कि अपने आचार-व्यवहार और जीवन-दृष्टि से भी। वे रसिकता से ओत-प्रोत व्यंजनाप्रिय, मीठी चुटकी लेने वाली गोपियाँ नहीं हैं। वे श्रमजीवी आँखें हैं, जो लड़िया कर केवल ताना नहीं मारतीं।

अपने अंतरंग प्रेम के बावजूद उन्हें अपनी उपेक्षा मंज़ूर नहीं है।

'छत्तीसगढ़ी दानलीला' की संरचना में निहित फ़ोर्स इस काव्य को भक्ति-प्रेरित रचनाओं से एक भिन्न चरित्र प्रदान करता है। राधा और उसकी सहेलियाँ शृंगार करती हैं और कृष्ण से मिलने की साध लिए निकलती हैं, तो उनके इस प्रमाण में किसी मड़ई-मेले में जाने वाली छत्तीसगढ़ी स्त्रियों के उफनते उत्साह का भरा-पूरापन है। रौताइनें घर-घर से निकलती हैं, जो दौरी में फाँदने लायक जँवरिहा हैं। यह दैहिक शक्ति की प्रभा है, जो सार्थक उल्लास में पर्यवसित हो रही है। उनके शृंगार-चित्रण और प्रस्थान में सामूहिकता की लय है। यह छत्तीसगढ़ की ग्रामीण स्त्रियों की बड़ी खूबी है। हाट-बाज़ार को जाती छत्तीसगढ़ी औरतों को जिसने देखा है, वह उनके समूह की गति और सहज उल्लास की ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। चटक रंग के कपड़ों में पारंपरिक जेवरों से सजी-धजी ये औरतें गति, उत्साह, रंग और स्वर से सजी पेंटिंग की तरह लगती हैं। इसे शब्दों में बाँधने का अद्‌भुत कौशल सुंदरलाल में है-

कोनो ला घुँघरू बस भावै, छुमछुम छुमछुम बाजत जावै।
खनन-खनन चूरी सब बाजै, खुल के ककनी हाथ बिराजै।
चाँदी के सूता झमकावे, गोदना ठाँव-ठाँव गोदवाये।
दुलरी तिलरी कटवा मोहैं, औ कदमाही सुर्रा सोहै।

औरतों का यह समूह गिजगिज-गिजगिज करता है और वे चकमक-चकमक चमकती हैं। उनकी मसक भरी जवानी गिद्द मसानी कर रही है। वे कछोरा बाँध कर छनाक-छनाक चलती हैं। यह एक जातीय बॉडी लैंग्वेज है, जिसमें नज़ाकत के स्थान पर कर्मशीलता की गति और शक्ति है। रीतिकालीन सामंती सौन्दर्यबोध से भिन्न यह मिहनतकश औरतों की सुंदरता का जयगान है। उनकी उमंग मध्ययुगीन कवियों के काव्य में अवतरित कोमलांगी गोपियों की उद्वेग भरी आकांक्षाओं से भिन्न है। इस कविता की अंतरंग आभा में कवि की वह दृष्टि उपस्थित है जो नवजागरण-काल के मूल्यों से प्रभावित है। छत्तीसगढ़ी बोली में काव्य-रचना का महत्व तो है ही, उस काव्य रचना की प्रकृति उसे विशिष्ट बनाती है।

कृष्ण-काव्य में दानलीला का प्रसंग दो तरह से शामिल हुआ है। लीलापुरुष की लीला के रूप में यह माधुर्य भाव की भक्ति के कवियों को आकृष्ट करता रहा है। आधुनिक युग की कृष्ण-कथाओं में यह प्रसंग एक राजनैतिक निहितार्थ लेकर आया है। उसकी हल्की झलक 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' में भी दिखलाई देती है, जब कृष्ण कहते हैं कि कंस से कौन डरता है ? ऐसे हजारों कंस आएँ तो क्या फर्क पड़ता है। यह

आश्चर्य अवश्य होता है कि कंस को चुनौती देते-देते, स्वाधीनता आंदोलन से जुड़े रचनाकार का नायक कामदेव का मुलाजिम बनकर युवतियों से जगात माँगने लगता है। नारी-देह के विविध अवयवों की सुंदरता पर मोहित कृष्ण की माँग माधुर्य और शृंगार-परक भावों से युक्त भक्ति-परंपरा से जुड़ती है। सुंदरलाल उस परंपरा का पूरी तरह अतिक्रमण नहीं कर सके हैं।

सुंदरलाल शर्मा की अन्य रचनाओं के उपलब्ध न होने के कारण यह प्रश्न अधिक परेशान करता है, किन्तु यह द्रष्टव्य है कि सुंदर कवि की रसज्ञता संयमित और शालीन है। वस्तुत: अधिकांश रचनाकार जीवन को समग्रता में देखते हैं। उनके लिए क्रांति और प्रेम, आदर्श और आक्रोश सभी कुछ रचना के विषय हैं। यदि हम बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों की रचनाधर्मिता पर दृष्टिपात करें, तो इस सत्य को आसानी से देख सकते हैं। सुंदरलाल शर्मा की सभी कृतियों के सामने आने पर उनके कवित्व का सम्यक् मूल्यांकन संभव हो सकेगा।

❖

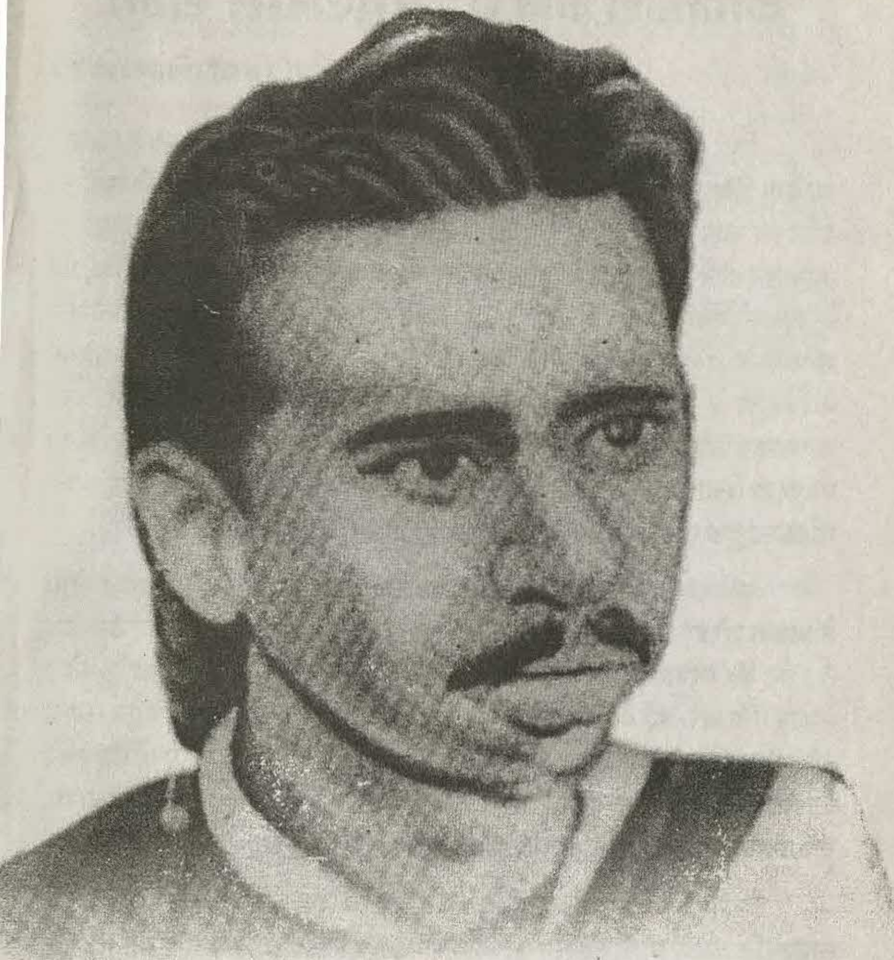

छत्तीसगढ़ के गाँधी

पं. सुंदरलाल शर्मा

क्रांतिधर्मा कवि पं. सुंदरलाल शर्मा

■ डॉ. चित्तरंजन कर

जिसे हम व्यक्ति का 'आदर्श' कहते हैं, वह उसके व्यक्तित्व और उसके व्यवहार का ऐसा निष्कर्ष होता है, जिस में वह स्वयं प्रतिबिंबित होता है। आदर्श को इसीलिए दर्पण भी कहा जाता है। पं. सुंदरलाल शर्मा के जीवन-वृत्त से उन के आदर्श का आकलन करने के लिए उन के जीवन-काल की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, एवं नैतिक परिस्थितियों की सूक्ष्म पड़ताल करना अनिवार्य है। भारतवर्ष में उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों की स्थिति अँगरेज़ी राज के चरमोत्कर्ष और देशी रियासतों के विघटन के बीच आम जनता की वह कारुणिक दशा थी, जब पढ़े-लिखे और जागरूक परिवार में जन्म लेने के बावजूद पं. सुंदरलाल शर्मा - जैसे मेधावी बालक को घर पर ही शिक्षा ग्रहण करनी पड़ी। पं. सुंदरलाल शर्मा का वह समाज उस समय परतंत्र भारत का दुखता-कराहता अंग था, जिस की आत्मा थी राष्ट्रीयता।

प्रतिभा ही व्यक्ति को प्रकाशित करती है, परंतु प्रतिभा का मूल्य है उस दिशा में अथक परिश्रम। पं. सुंदरलाल शर्मा की रचनात्मक प्रतिभा इस का ज्वलंत उदाहरण है। उन की रचनात्मकता केवल शब्द-विन्यास तक सीमित नहीं थी, अपितु जिस समाज में वे पले-बढ़े और जिन अन्य समाजों के परिप्रेक्ष्य में उन के परिवार एवं समाज को अभिशापित किया जा रहा था, उस समूची सामाजिक संरचना को पुनर्रचित करने का महत्कार्य भी उस रचनात्मकता की परिधि में समाहित था। इस रचनात्मकता का सूत्र उन्होंने शब्द-ब्रह्म के अचूक प्रभाव से स्थापित किया।

किशोर-मन में दलित-पीड़ित-शोषित-अछूत निम्न वर्ग के प्रति सच्ची सहानुभूति जगाने वाली उद्दाम तरंगें उन की 17 वर्ष की उम्र में कविता बन कर फूट पड़ीं -

"भैयो पतितों का उद्धार सदा करते रहो जी
बिछड़े पतन हुए लोगों को ऊपर लेहु उठाय
प्रेम समेत इन्हें अपनाकर छाती लेहु लगाय"

पं. सुंदरलाल शर्मा ने तद्युगीन काव्य-धारा में ब्रज मिश्रित खड़ी बोली की रचनाएँ तो कीं ही, छत्तीसगढ़ी में दानलीला की रचना भी की। 'श्री राजीवक्षेत्र माहात्म्य', 'ध्रुवचरित्र आख्यान', प्रलाप-पदावली', 'राजीव प्रेम पीयूष' (पत्रिका), 'कृष्ण जन्म आख्यान', 'छत्तीसगढ़ी दानलीला', 'छत्तीसगढ़ी रामायण', 'कंसवध', आदि के

रचयिता पं. सुंदरलाल शर्मा प्रथम दृष्टि में भक्त-कवि प्रतीत होते हैं, परंतु यह भक्ति उन की अकर्मण्यता या अक्षमता की परिणति नहीं है। उनके पौरुष और दृढ़ संकल्प की मिथकीय या प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति ही इन रचनाओं में हुई है। क्योंकि जैसा कि कालीकट विश्वविद्यालय, के हिंदी प्रोफ़ेसर डॉ. आर. सुरेंद्रन की मान्यता है कि भक्ति विनत भाव से होती है, जबकि क्रांति उग्रता से ही संभव है। पं. सुंदरलाल शर्मा ने मध्यम मार्ग कभी नहीं अपनाया। वे सत्य के लिए अपना प्राणोत्सर्ग तक करने के लिए तत्पर थे।

वस्तुतः ध्रुव, राम, कृष्ण, आदि पौराणिक-ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से उन्होने उन आदर्श चरित्रों को अपना अवलंब बनाया है, जिन्होने आजीवन संघर्ष ही संघर्ष कर के अपना जीवन-पथ प्रशस्त किया। उदाहरणार्थ, ध्रुव की तपस्या की महत्ता का ऐसा वर्णन तपस्वी सुंदरलाल ही कर सकते थे -

"कौन शिशु जगत अस कठिन करनी करै "
जाबो, जाबो जावो कीजै तप तप तप " (श्री ध्रुवचरित आख्यान, पृ. 7,10)

कृष्ण के व्यक्तित्व में क्या सुंदरलाल शर्मा का फक्कड़ाना-निर्भीक स्वभाव व्यक्त नहीं हुआ है -

" इहाँ कंस ला कउन डेरावै।
ऐसन कंस हजारों हावैं॥
चूँदी धर के अभी पछारौं।
चोंगी पियत भरे में मारौं।
तेखर डर मोला डरुवाथौ।
मोला लइका जान बताथौ॥
रकसा रकसिन खेतल मारेव।
नाथेंव बिसहर साँप निकारेंव॥ (छत्तीसगढ़ी दानलीला)

यहाँ यह ध्यातव्य है कि पौराणिक कथावस्तु का वर्णन भी सार्थक और सटीक बन पड़ा है और साथ-साथ उस समय की राजनैतिक-सामाजिक परिस्थिति भी चित्रित होती चली है, जिस में पं. सुंदरलाल शर्मा का विद्रोही स्वरूप ही प्रच्छन्न रूप से अभिव्यक्त हुआ है।

छत्तीसगढ़ी 'दानलीला' में कतिपय प्रसंग श्रृंगार के भी हैं। इस प्रकार पं. सुंदरलाल शर्मा न तो भक्तिकाल के सूर-तुलसी की बिरादरी में शामिल किए जा सकते हैं और न ही रीतिकाल के दरबारी कवियों की पंक्ति में उन्हें बिठाया जा सकता है। वे

सही अर्थों में क्रांतिधर्मा व्यक्ति थे, जिन की क्रांति जनक्रांति की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति कही जा सकती है। तात्पर्य यह है कि पं. शर्मा की ईश्वर-भक्ति, शृंगारिक वृत्ति एवं सामाजिक क्रांति का पर्यवसान राष्ट्रभक्ति में ही होता है -

सिद्‌ध दायक बुद्धिदायक एक वंदेमातरम्
ओजमय बल क्रांतिमय सुख शांति वंदेमातरम्

X X X

आठों पहर दिल में रहे गुरुमय वंदेमातरम्
वेग से सिर भी कटे मृदुबात वंदेमातरम्
जेल में हो तो जपो शुभनाम वंदेमातरम्

सात्विक प्रेम की परिधि इतनी व्यापक है कि उस में मानव-प्रेम, राष्ट्र-प्रेम और ईश्वर-भक्ति सभी के लिए अवकाश रहता है। वे तत्कालीन छत्तीसगढ़ की दुर्दशा से सदैव पीड़ित रहते थे। उन में जागृति-मंत्र फूँकने का काम 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' के पदों ने किया। माधवराव सप्रे के पत्र दिनांक 17.7.1917, में यह ध्येय सुस्पष्ट है -

"मुझे विश्वास है कि भगवान् कृष्णचंद्र की लीला के द्वारा मेरे छत्तीसगढ़-निवासी भाइयों का अवश्य कुछ सुधार होगा।"

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कहा था - "निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल। निज भाषा उन्नति बिना कटै न हिय को सूल ॥ पं. सुंदरलाल शर्मा ने 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' के प्रथम संस्करण (1960 ई.) में अपने उद्देश्य को प्रकट करते हुए लिखा था - "मुझे वास्तविक आनंद तो उस दिन संप्राप्त होगा कि जिस दिन हमारी यह प्यारी मातृभाषा भी अन्य देशभाषाओं की भाँति अपनी उन्नति का सन्मार्ग अवलंबन करेगी।"

पं. सुंदरलाल शर्मा ने छत्तीसगढ़ की लोक-संस्कृति को अविकल रूप में 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' में उँकेरने की चेष्टा की है। 'श्री ध्रुव चरित आख्यान' कीर्तन-शैली पर आधारित है, जिसमें विद्‌यापति-सूर-तुलसी-मीरा की पद-शैली द्रष्टव्य है -

"भैया मोहि माता ने मारी।
मोको कहि गोदवे उपजा तेरे जो गोद नहीं भारी।
टपकत आँसू कहत ध्रुव बालक गहि कर अंचल सारी।
सुंदर सुकवि बात सो छिद गई मन भीतर महतारी ॥"

राजिम निवासी पं. सुंदरलाल शर्मा ने प्रबंध-शैली में 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' और 'श्री राजीव क्षेत्र माहात्म्य' की रचना की, जिसमें दोहा-चौपाई की स्वीकृत शैली को चुना है -

"तेलिन एक सुभक्ती करही।
निस-दिन ध्यान प्रभु के धरहीं॥
राजिम नाम जगत विख्याता।
सुमरहिं सदा स्वजन सुखदाता॥
रहहि सदा राजिवपुर माहीं।
तजि पद प्रीति काम कछु नहीं॥ (श्री राजीव क्षेत्र माहात्म्य)

पं. सुंदरलाल शर्मा की भक्ति-संबंधी रचनाओं की बहुलता है। उन के लिए 'भक्ति' का वास्तविक अर्थ 'सेवा' है -√भज् (सेवायाम्) + क्तिन्। इसी सेवा-भाव से उन्होंने हरिजनोद्धार, हरिजनों का मंदिर-प्रवेश, ग्राम-स्वच्छता-अभियान, वाचनालय, धर्मशाला, छात्रावास, आदि की स्थापना और क्रियान्वयन में अपनी ज़मीन-जायदाद की भी परवाह नहीं की। त्याग ही उन की उपलब्धि का मूल मंत्र बना।

अँगरेज़ी राज में जिस तरह प्रजा का शोषण हो रहा था, उस से दुखित थे। उनकी व्यंग्योक्ति इस तथ्य को उजागर करती है -

"रैय्यत के धन चुहकै खरचैं लाख-करोर
ढोंगी के बेटा बने रेंगै मूछ मरोर
पैसा जिहाँ हराम के बिन मिहनत के सोन
फूँके बर तेखर भला! मया-पिरा है कौन
पेटा चोटी करि प्रजा जेला जोख हाय!!
धन राजा तेला अरे अइसन देत उड़ाय " (-कंसवध खण्डकाव्य)

संक्षेप में, पं. सुंदरलाल शर्मा का जीवन आद्यंत रचनात्मक रहा और उन्होंने कभी कहीं भी समझौता नहीं किया। उन्होंने कविताई को बहुजनहिताय अपनाया और एक ऐसा दृष्टांत प्रस्तुत किया, जो युगों तक आनेवाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा-स्रोत बना रहेगा। जिस ने अपनी पुरखौती ज़मीन-जायदाद और सुख-सुविधाओं की परवाह नहीं की, उस के लिए सामाजिक बहिष्कार, राजनैतिक उपेक्षा, तथा जेल की यातनाएँ कहाँ अधिक मूल्य रखती हैं। वे सच्चे क्रांतिधर्मा थे।

सहायक ग्रंथ : डॉ. सविता मिश्र, 'उत्तर भारतेंदुयुगीन हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में पं. सुंदरलाल शर्मा की संपूर्ण रचनाधर्मिता का मूल्यांकन' पी-एच.डी. शोध-प्रबंध पं. रविशंकर विश्व विद्यालय, रायपुर (अप्रकाशित)

❖

स्वतंत्रता संग्राम में "*श्रीकृष्ण जन्म स्थान समाचार पत्र*" की भूमिका

■ डॉ. रमेन्द्रनाथ मिश्र

छत्तीसगढ़ के रायपुर जिलांतर्गत चमसूर-राजिम के पं. सुंदरलाल शर्मा का जन-जागृति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है वे साहित्यकार एवं समाज सुधारक थे। संस्कृत, उड़िया, बंगला, मराठी, महाजनी गुजराती, उर्दू आदि भाषाओं के जानकार अध्येता थे। वे एक अच्छे चित्रकार भी थे उनकी प्रारंभिक कविता 'रसिक मित्र' नामक पत्रिका कानपुर में प्रकाशित हुई थी। राजिम में उन्होंने कवि समाज तथा रायपुर में बाल समाज नामक संस्था की स्थापना की थी।

पं. शर्मा के द्वारा रचित कृतियों में पं. विश्वनाथ पाठक पर काव्य (1903) प्रहलाद नाटक (1910) छत्तीसगढ़ी दानलीला (1913) श्री राजिम क्षेत्र महात्म (1915), प्रताप पद्यावली (1915), श्री रघुराज गुणकीर्तन (1906-1915), ध्रुवचरित आख्यान (1915), करुणा बत्तीसी (1915), छत्तीसगढ़ी रामायण (1912 अ), सतनामी पुराण (अ) एवं अनुपलब्ध कृतियों में (1) कंसवध खंडकाव्य (2) राजिम प्रेम पीयूष (3) पार्वती परिणय नाटक, काव्यामृत वार्षिकी काव्य (4) श्री कृष्ण जन्म आख्यान (5) संज्ञा सम्राट (उपन्यास) (6) स्फुट पद्यसंग्रह (8) भजन संग्रह (9) ब्राह्मण गीतावली (10) विक्रम शशिकला नाटक (11) श्रीकृष्ण जन्म स्थान समाचार पत्र प्रमुख थे।

पं. शर्मा स्वतंत्रता-संग्राम-सेनामी एवं समाज सुधारक थे तथा भारत माँ के उन सपूतों में थे जिन्होंने देश को स्वतंत्र कराने हेतु ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ़ सत्याग्रह तथा जन-आंदोलन का शंखनाद किया, उन्होंने घोषणा की -

"यह भारत जो लो नहीं फिर स्वतंत्र हो जाए।
चाहे मर मिट जाइए मत बैठिये थिराय।
जो लो रंग में शांति है तब से जो लो प्रान
सोवत जागत रैन दिन रहे देश का ध्यान।"

अपनी राष्ट्रीय कविताओं से जन-जीवन को प्रभावित करने वाले शर्मा जी को तत्कालीन ब्रिटिश हुकूमत ने विद्रोही माना जिसके कारण उन्हें अनेक बार जेल की

यातनाएँ भोगनी पड़ीं। शर्मा जी गाँधी जी के निकट थे, वे सूरत, कलकत्ता, बम्बई, जयपुर आदि काँग्रेस अधिवेशनों में सम्मिलित हुए। कंडेल नहर सत्याग्रह 1920 में उन्हीं के नेतृत्व में हुआ, कृषकों ने सरकारी कानून तोड़े। पं. शर्मा जी के प्रयासों से 1920 में (20 दिसंबर) प्रथम बार गाँधी जी रायपुर आये। असहयोग आंदोलनान्तर्गत रायपुर जिले के पाँच व्यक्ति जेल गए जिनमें पं. सुंदरलाल शर्मा प्रमुख थे। पं. शर्मा ने रायपुर जेल से हस्तलिखित पत्रिका निकाली जिसका नाम रखा "श्रीकृष्ण जन्म स्थान समाचार पत्र"। यह पत्रिका द्विमासिक थी, प्रथम वर्ष के इसके 6 अंक निकले थे। पत्रिका में जहाँ एक ओर जेल का समाचार होता था वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने वाली रचनाएँ होती थीं तथा व्यंग भी होता था जो अँग्रेज्रों के लिए प्रयुक्त होता था। अंक 6 में जो सामग्री उपलब्ध है उसमें वंदेमातरम् ईशस्तवन, मसविदा क़ानून खादिये वतन व मुसाफिरे मसवदा 1921, जेल में गरमी का बहारदार नमूना, राजस की मिश्रजी का मुंहतोड़, उत्तर जेल में देशभक्त क्यों ठूंसे गए, स्थानीय समाचार, कागज बारूद है, रायपुर निवासी जनता की भारी भूल, स्वराज्य आश्रम, जेल की शरारत, काव्य कलाप, जेल की बहार, ग़ज़ल, स्वराज्य के जमाने जेल का स्वरूप क्या रहेगा, पुरौनी समाचार, शर्माजी की नम्र प्रार्थना, राष्ट्रीय दिन आदि प्रमुख थे।

शर्माजी का स्पष्ट विचार था "सत्य के लिए डरो मत, चाहे जियो या मरो" जेल को उन्होने आश्रम कहा। जलियाँवाला बाग घटना दिवस को उन्होंने राष्ट्रीय दिन के रूप में आयोजित किया।

जेल से रिहा होने वाले सत्याग्रहियों को सम्मानित किया जाता था। अभिनंदन पत्र दिया गया -

"तन मन, धनबल, बुद्धिबल
यह जीवन अरु प्राण
भारत माँ के चरण में, कर दो जै बलिदान,
भारत कीरत की ध्वजा, फिर जग में फहराय
रामराज सत्जुग बहुरि फिर
एक बार दिखाय
जगदीश्वर हम सब के करिहें सहारा
है हिन्द स्वतंत्र पर जाते सशंय नाम *(11-1-23)*

समाचार-पत्र में देश भक्ति से परिपूर्ण ओजपूर्ण विचार मिलते हैं जो जेल के

अंदर विचार-विमर्श को तो अभिव्यक्त करते ही हैं, बाहर के नागरिकों को भी कर्त्तव्य बोध के प्रति जाग्रत करने से सहायक रहे।

जेल के अंदर पं. सुंदरलाल, हामिदअली, भगवती प्रसाद मिश्र, अबुल रउफ खां, नारायण राव मेघावाले जी आदि के विचार-विमर्श की जानकारी भी मिलती है। व्यंग लेख में पतलून प्रसाद चूल बसे एक अँग्रेज़ अधिकारी से संबंधित हैं। समाचार-पत्र में छपते-छपते कालम की तरह "पुरौनी-समाचार" शीर्षक भी मिलता है। राष्ट्रीय आंदोलन के संग्रामियों को जेल में कागज कलम भी उपलब्ध नहीं कराए जाते थे। शर्मा जी की छत्तीसगढ़ी रामायण को जब्त कर लिया गया था जिसे एकांत में बैठकर दस हजार पंक्तियों के रूप में उन्होने लिखा था। त्यौहार भी सोत्साह मनाए जाते थे -

जेल में ग़ज़ल के रूप में अभिव्यक्ति -

सुनाऊँ हाल दिल ऐसी कहाँ तावोतवाँ मेरी
बहुत पुरदर्द और हसरत भरी है दासताँ मेरी
मैं खुद मालिक हूँ जब अपने चमन का
बागबाँ क्या है
उसे सरसब्ज कर जैवेंगी खुद
कुर्बानियाँ मेरी
मिटा दें सफ हमें दुनिया से जोरो
जुलो जालिम को
दुवा तुमसे यही मालिक कोनो
मफाँ मेरी
हुकूमत ने लगाकर मुहर एक सौ आन
की मेहवी
सनम दी है के है
तलवार से बढ़कर
जवाँ मेरी
मुहम्मद अब्दुल रऊफ खां "मेहवी"

श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान समाचार-पत्र में एक चित्र पं. सुंदरलाल शर्मा का बनाया हुआ है जिसमें पं. सुंदरलाल शर्मा का बनाया हुआ है जिसमें पं. भगवती प्रसाद मिश्र के साथ जेल अधिकारी को दुर्व्यवहार करते बताया गया है। सम्पूर्ण दृष्टि से पत्रिका जन

जागृति का सशक्त माध्यम थी ताकि लोग जान सके कि जेल में स्वतंत्रता-संग्राम-सेनानियों के साथ कैसा व्यवहार होता है।

पं. शर्मा सिद्धांती पुरुष थे, वे सिद्धांतों के प्रति सदैव अडिग रहे। अपूर्व त्याग, सतत कर्मठता और निस्पृह देश सेवा तथा जन-सेवा के कारण वे इस क्षेत्र के सर्वाधिक लोकप्रिय व्यक्ति रहे। कृषक, मजदूर, आदिवासी एवं हरिजनों के मध्य उन्होंने व्यापक कार्य किया।

महात्मा गाँधी ने रायपुर आगमन के अवसर पर यह कहा था कि अस्पृश्यता निवारण के क्षेत्र में पं. शर्मा मेरे से दो वर्ष बड़े हैं। छत्तीसगढ़ में वे सामाजिक जागृति के प्रणेता थे, अतः उन्हें 'छत्तीसगढ़ी गाँधी' कहा जाता है।

फरवरी 1924 में मंडला जिला के नैनपुर, भुआ बिधिया, डिंडौरी आदि स्थानों में जन जागृति का कार्य उन्होंने अपने अनेक भाषणों के माध्यम से किया। वे छत्तीसगढ़ की ओर से प्रांतीयकमेटी के लिए तथा 9-8-24 को हिन्दुस्तानी काँग्रेस कमेटी के उप सभापति चुने गए। 28-12-1904 को उनका आकस्मिक निधन हुआ। प्रदेश ने एक तेजस्वी नेता खो दिया। वे राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जागृति के सहायक थे इस बात की पुष्टि ''श्रीकृष्ण जन्म स्थान पत्रिका'' से भी होती है।

जेल में पं. सुंदरलाल शर्मा एवं नारायण राव मेघावाले के विषय में कर्मवीर ने लिखा है- ''इन दोनों चरित्रवान एवं मातृभूमि के प्रति समर्पित नेताओं ने जेल में नौकरशाही का मखौल उड़ाया तथा ज़मानत पर रिहा होने से इंकार कर दिया और जनता को एक वर्ष तक शांत होने के लिए कहा। पं. शर्मा जी व मेघावाले दोनों बहादुर देशभक्त थे, ये दोनों नेता अन्याय के समक्ष झुकने के बजाय जेल जाना अधिक पसंद करते थे। इन नेताओं को सम्मेलन में बधाइयाँ दी गईं। अब इन्हें कारावास में भेज दिया गया है। उनका यह त्याग स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है कि भारत के देश भक्तों के लिए जेल ही एक सम्मानजनक स्थान है।''

❖

पं. सुन्दरलाल शर्मा और स्वतंत्रता आंदोलन

■ डॉ. रामकुमार बेहार

छत्तीसगढ़ी गाँधी के रूप में चर्चित वर्णित सुन्दर लाल शर्मा का संपूर्ण जीवन छत्तीसगढ़ में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में व्यतीत हुआ। बहुमुखी प्रतिभा के इस धनी ने छत्तीसगढ़ के इतिहास में अपने लिए गौरवास्पद स्थान बनाया है। सत्य के प्रति जो आग्रह गाँधी जी का था उस से किसी भी प्रकार कम आग्रह सुन्दरलाल जी का नहीं था। उन्होंने सन् 1909 में लिखा-

सबको परतीत जरूर ही है -
हम झूठ बनाय कहेंगे नहीं
धड़ते सिर हूँ कटि जाय न क्यों
सच को कहनी में डरेंगे नहीं।

सुन्दरलाल शर्मा में न केवल कहा वरन जीवन में भी उसे उतारा। कथनी और करनी में भेद न रखने वालों में शर्मा जी की गणना होती है। आज़ादी मिलने के बाद कई कारणों से सुन्दरलाल शर्मा जी के योगदान को प्रचारित-प्रसारित न करने की अघोषित नीति पर छत्तीसगढ़ के नेतागण चलते रहे। मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह को यह श्रेय जाता है कि उन्होंने सुन्दरलाल शर्मा एवं गुरु घासीदास जैसे लोगों को प्रचारित-प्रसारित किया, यद्यपि उनका उद्देश्य राजनैतिक था मगर अंचल को यह लाभ हुआ कि इन महापुरुषों के बारे में लोग सज्ञान हुए। भारत के राष्ट्रपति, ज्ञानी जैलसिंह ने 18 फरवरी 1984 को राजिम में शर्मा जी की प्रतिमा का अनावरण कर के मानो शर्मा जी के व्यक्तित्व व कृतित्व का ही अनावरण किया।

शर्मा जी का जीवन एक ऐसी खुली किताब है जिसे पढ़कर सहसा विश्वास नहीं होता है कि एक ऐसा व्यक्ति जिसका जन्म उच्च ब्राह्मण कुल में हुआ था जिनके पिता के पास अनेक गाँव थे, भव्य अट्टालिका था, वह फकीरी का रास्ता अपनाएगा। राष्ट्रहित के लिए उन्होंने सुख-सुविधाओं का परित्याग कर दिया। राष्ट्रीय संचेतना के महारथियों में उनकी गणना होती है। बहुभाषी थे, संस्कृत, उड़िया, बंगला, मराठी, उर्दू, हिन्दी भाषाओं में पैठ थी, बंगला तो वे धारा प्रवाह रूप में बोलते थे। किशोर

अवस्थ से वे लिखने लगे थे, कविता उनकी प्रिय विधा थी। सन् 1906 (उम्र 26 वर्ष) में छत्तीसगढ़ी भाषा में उन्होने 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' की रचना की। इस पुस्तक के अनेक संस्करण निकले। छत्तीसगढ़ी दानलीला की पंक्तियाँ लोगों को सहज रूप से कंठस्थ थी। रामचरित मानस की पंक्तियों की भाँति, सामान्य किसान, गृहणी भी इसकी पंक्तियाँ गाती रहती थीं। यह ग्रंथ इतना लोकप्रिय हुआ कि यह अफवाह भी फैली कि इसका अँग्रेज़ी में अनुवाद हुआ है और लंदन में प्रकाशित-प्रसारित हो रहा है।

सन् 1905 ई. में भारत की तत्कालीन अँग्रेज़ी सरकार ने बंगाल का विभाजन किया। घोर जन-विरोध के बावजूद सरकार ने इसे अमली जामा पहनाया। शर्मा जी के जीवन में यह घटना परिवर्तन लाने वाला सिद्ध हुआ। राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करना उन्होने अपना लक्ष्य निर्धारित किया। 1906 के काँग्रेस के सूरत अधिवेशन में वे, प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए। यही से उनके राजनैतिक जीवन में तीव्रता आई। अँग्रेज़ी हुकूमत के विरुद्ध आज़ादी शंखनाद किया। छत्तीसगढ़ में जनसभाओं, भाषणों के द्वारा उन्होंने बंग-भंग का विरोध किया।

अंचल में राजनैतिक जागरण का यह श्रीगणेश था। काँग्रेस के अधिवेशनों में अंचल का प्रतिनिधित्व वे लगातार करते रहे। कलकत्ता, बंबई, जयपुर, कोकीनाड़ा आदि अधिवेशनों में वे सम्मिलित हुए। कोकीनाड़ा अधिवेशन में उन्होने राजिम से 700 कि.मी. की पदयात्रा की। उन के साथ नारायण राव मेघावाले भी थे। किसी छत्तीसगढ़िया की यह सर्वाधिक लंबी पदयात्रा थी, काँग्रेस के अधिवेशनों में सम्मिलित होकर जो ऊर्जा व मार्गदर्शन वे प्राप्त करते थे उसे छत्तीसगढ़ में फैलाते थे। राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने के उनके प्रयास सतत चलते रहते थे। अंचल में लगने वाले विभिन्न मेलों का उपयोग वे काँग्रेस के सक्रिय सदस्य बनाने में करते थे।

शर्मा जी ने जेल में जेल पत्रिका निकालते थे - ऐसे ही एक अंक में उन्होंने जो लिखा, उससे ज्ञात होता है कि देशहित का उन्हें कितना ध्यान रहता था -

"सोवत जागत रैन दिन
रहे देश का ध्यान
भारत कीरत की ध्वजा
फिर जग में फहराए"

लोगों को मातृभूमि की आज़दी के लिए सब कुछ निछावर कर देने की सलाह व आव्हान वे करते थे -

"तन बल, जन बल, बुद्धिबल
यह जीवन अरु प्रान
भारत माँ के चरणों में
कर दीजै बलिदान।"

शर्मा जी की कथनी करनी में भेद नहीं था। उन के 18 गाँव बिक गए लेकिन उन्होने हिम्मत नहीं हारी। राजनीति में उन्होने अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया। मातृभूमि की आज़ादी ही उनका एकमात्र लक्ष्य था। दुर्भाग्यवश वे आज़ादी में खुली साँस नहीं ले सके, आज़ाद भारत वे देख नहीं सके। उन्होने 'छत्तीसगढ़ अंचल' में आज़ादी की लड़ाई का जो बिगुल बजाया उसकी प्रतिध्वनि वर्षों तक लोगों को राष्ट्र के लिए बलिदान देने की सीख देती रही।

समाजिक क्षेत्र में उनका योगदान अछूतोद्धार से रेखांकित होता है। इस क्षेत्र में महात्मा गाँधी ने उन्हें अपना गुरु माना। शर्मा जी को गाँधी जी का यह तमगा प्रेरित करता था। गाँधी जी जैसे व्यस्ततम व्यक्ति को उन्होने छत्तीसगढ़ लाने में सफलता प्राप्त कर यह दिखला दिया कि राष्ट्रीय स्तर पर उनका कद कितना बड़ा था। कंडेल नहर सत्याग्रह का नेतृत्व स्वीकार करने के लिए गाँधी जी को मनाकर शर्मा जी ने चमत्कार कर दिखाया। 20 दिसंबर 1920 को गाँधीजी का रायपुर आगमन हुआ।

कंडेल नगर सत्याग्रह ने अंचल में अभूतपूर्व जाग्रति लाई। सरकार को बाध्य होकर जन-आंदोलन के समक्ष घुटने टेकने पड़े, इसी कारण गाँधी जी ने इस आंदोलन की प्रशंसा करते हुए इसे दूसरा वारडोली आंदोलन कहा। रूद्री-नवागाँव के जंगल-सत्याग्रह में भी शर्मा जी ने भाग लिया। गाँधी जी के नेतृत्व में तीन बड़े आंदोलन हुए - 1920 में असहयोग आंदोलन, 1930 में सविनय अवज्ञा आंदोलन और 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन। शर्मा जी मृत्युपर्यंत गाँधी जी के सहयोगी रहे। उनके प्रारंभिक दोनों आंदोलनों में उन्होने भरपूर सहायता पहुँचाई। 1940 में निधन होने के कारण तीसरे आंदोलन और बाद में भारत की आज़ादी नहीं देख पाए।

मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध स्वतंत्रता-संग्राम-सेनानी और कवि स्व. माखनलाल चतुर्वेदी ने गाँधी और सुन्दरलाल शर्मा के संबंध में बहुत सुन्दर ढंग से लिखा है -

"दो महान दिव्य आत्मा का जन्म हुआ जिसमें एक तो महात्मा गाँधी जो भारत केसरी थे, दूसरी महान आत्मा पंडित सुन्दरलाल शर्मा (छत्तीसगढ़ी गाँधी) छत्तीसगढ़ी केसरी कहलाए। एक दिव्य आत्मा का जन्म साबरमती के किनारे हुआ, तो दूसरी

आत्मा का जन्म राजिम के चित्रोत्पला के किनारे। दोनों ही महापुरुषों ने भारतीय जनमानस में स्वतंत्रता-आंदोलन एवं जन-जागरण के कार्यों में अभूतपूर्व योगदान दिया जो अत्यंत स्मरणीय है तथा इसकी गाथा इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है। इन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को नई दिशा प्रदान की। दोनों अमर हैं।"

❖

छत्तीसगढ़-मित्र में पं. सुंदरलाल शर्मा के पत्र

■ डॉ. सुधीर शर्मा

छत्तीसगढ़ी के लिए जो कार्य पं. सुंदरलाल शर्मा ने किया है, लगभग वही कार्य हिंदी के लिए भारतेंदु ने किया था। आज छत्तीसगढ़ी जिस मिठास के साथ छत्तीसगढ़ी साहित्य में विद्यमान है उस का अमृत-रस पं. सुंदरलाल शर्मा के साहित्य-कोष से आया हुआ है । इस से अलग पं. सुंदरलाल शर्मा की तत्कालीन हिंदी साहित्य समाज में भी विशिष्ट पहचान थी, इस के अनेक प्रमाण तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में भी मिलते हैं। वास्तव में उन तथा उन के साहित्य का उचित मूल्यांकन नहीं हुआ। राजनैतिक रूप से तो उन के कार्यों का मूल्यांकन हुआ और धीरे-धीरे उन के योगदान उन्हें स्थापित करते चले गए। साहित्य में ऐसा नहीं हुआ। छत्तीसगढ़ी साहित्य में इस की शुरुआत स्व. हरि ठाकुर ने कर दी थी और आज भी पं. सुंदरलाल शर्मा छत्तीसगढ़ी साहित्य के भारतेंदु हैं। पं. सुंदरलाल शर्मा के द्वारा रचित हिंदी की रचनाओं का भी इसी ईमानदारी से मूल्यांकन होना था। उन के समकालीन पं. माधवराव सप्रे की पत्रिका 'छत्तीसगढ़-मित्र' में पं. सुंदरलाल शर्मा की हिंदी-साहित्य के प्रति ललक और उन की भाषा-प्रयोग के वैशिष्ट्य को परखा जा सकता है।

यहाँ इस संदर्भ में डॉ. अशोक सप्रे एवं मेरे द्वारा संपादित पुनर्प्रकाशित 'छत्तीसगढ़-मित्र' के कुछ अंकों में प्रकाशित पं.सुंदरलाल शर्मा के पत्र उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत हैं :-

प्रेरितपत्र

(1)

श्रीयुत सम्पादक महोदय,

छत्तीसगढ़ मित्र में प्रकाशन होने योग्य एक सत्य समाचार आपकी सेवा में भेजता हूँ। कृपापूर्वक किसी अधोस्थल में प्रख्यात कर मुझे उत्साहित कीजिए। मध्यप्रदेश

के रायपुर जिले में **राजिम** अत्यन्त प्रसिद्ध और पुरातन क्षेत्र है। यहां के दाऊ धर्मावतार श्रीमहामान्यवर महाराष्ट्र कुलभूषण **महाड़िक सरकार राघोबा साहब रायबहादुर** महोदय् की कीर्ति प्राय: इस प्रान्त के सभी सभ्यासभ्य लोगों को विदित है। इनके उदार हृदय में इनके योग्य युवक पुत्र श्रीमान् **महाडिक कृष्णराव साहब** के वियोग ने आज एक वर्ष से अपना अधिकार जमा शोकसागर में डालरखा था कि उस पर भी अनाश्रुत महावज्रपात आकर उपस्थित हुआ। वही जो आंखों का तारा, प्राणों का प्यारा, स्वर्ग वासी युवक का धरोहर चिन्हस्वरूप, "प्रपुत्ररत्न" विव्हलित प्यासे पपीहा की स्वाति था, अपने बूढ़े बाबा को हिचकते हुए दुख समुद्र में महाप्रलय पर्यंत डुबा सकल परिजन कुटुंबियों को रुला लघु आयु में ही इस संसार से कूच कर गया! यहां सब प्रजाओं के हृदयपटल पर अत्यन्त शोक छाया हुआ हैं!! सर्वशक्तिमान परमेश्वर मान्यवर महोदय् को सन्तोष दें और माहड़िक महोदय् के लघु पुत्र श्रीमान् **बाबू गणपतराव साहेब** (यही आपके राज्य के एकमात्र पूर्वाधिकारी हैं, सम्प्रति राजकुमार कॉलेज रायपुर में विद्याभ्यास कर रहे हैं) सहस्रायु करैं हमारी प्रार्थना है!!!

"मित्र" का संवाददाता
पं. सुन्दरलाल शर्मा
महामंत्री, कविसमाज, राजिम

राजिम
11-5-1900

(2)

मान्यवर सम्पादक महोदय्!

निम्नलिखित समाचार अमूल्य जगतविख्यात पत्र के किसी अधोस्थल में प्रकाश कर कृतार्थ कीजिए।

यह बात सब हिन्दुओं को निर्द्वन्द्व माननीय है कि **राजिम** परम पवित्र और चिर प्रसिद्ध क्षेत्रस्थान है। यहां विशेष कर मुनी, धार्मिक, कर्मिष्ट, विद्वान और महात्मा साधू सन्त ही प्राय: निवास करते हैं। क्यों न करें! **श्री राजिमलोचन** महाराज का क्षेत्रस्थान जो है! जहां पर कलिकलुष विध्वंसीनी श्री महानद त्रिवेणी संगम की छट छहरा त्रिताप नाश करती हुई भक्तजन मानस मलिन्द को मोहित करती विराजमान हैं वहां इस बात का आश्चर्य ही क्या? अजी उसी राजिम क्षेत्र में कुछ काल से एक वृहत कवि समाज

स्थापित हुआ है। इतना ही नहीं पर इसके वास्तविक गुण होने के कारण सर्व सभ्य समाज ही परिचयी हो चुके हैं। यह समाज लगभग डेढ़ वर्ष से उन्नति करता हुआ इस प्रतिष्ठित अवस्था को प्राप्त हुआ है । इसके कविता हितकारी कर्तव्य और काव्य लालित्यता उत्तमता तथा सौन्दर्यता पर मुग्ध हो कई एक धनी मानी और पण्डित ने भारत के अन्य-अन्य भागों से प्रशंसा पत्र और पद प्रदान किए है। इन्स्पेक्टर जनरल श्री महामान्यवर **मनरो** साहिब बहादुर शिक्षा विभाग मध्यप्रदेश का इस सभा पर स्वयं विराजमान हो वक्तृता देना, विजीटर बुक में लिख सरकारी लायब्रेरी का अधिकार सभासदों को देना, प्रसन्नता प्रगट कर उद्देश्य स्वीकार करना, कुछ कम गौरव की बात नहीं है। अब उसी लोक विख्यात, श्रेष्ठ समाज के हितैषी कर्ताओं ने एक अत्यन्त सामयिक शिक्षाप्रद नखसिख सुन्दर लोकोपकारी साहित्य सम्बन्धी मासिकपत्र का निकालना स्थिर किया है । इसका विज्ञापन **छत्तीसगढ़-मित्र** के अन्यत्र स्थान में प्रकाशित है। अब इस गर्भस्थायी वाल्यपत्र को सहायता पहुँचाना भारतनिवासी सर्वविज्ञ तथा छत्तीसगढ़ प्रान्त के राजा महाराजा धनी मानी पण्डित कवि अध्यापक छात्रों तथा सरकारी कर्मचारियों का मुख्य कर्तव्य कर्म है। सर्वसाधारण तो यह आवश्यकीय किम्बा अनुष्ठेम कर्म समझा जावेगा कि इस पत्र के ग्राहक बन व बना कर इसे चिरंजीव रखने की चेष्टा करें। इस विषय के लिए हमारे विज्ञ सहयोगी **छत्तीसगढ़-मित्र** का आन्दोलन कर लोगों की रुचि को इधर आकर्षित करना एकमात्र नामकी सार्थकता है। क्योंकि यह प्रान्तीय उन्नति का उद्देश्य है। पत्रविस्तार की क्षमा चाहिए। इत्यलम् ॥

14/7/1900 भवदीय

राजिम पं. सुन्दरलाल शर्मा महामंत्री

इन पत्रों से पता चलता है कि उन की भाषा-शैली कितनी अच्छी थी। दानलीला और अन्य रचनाओं की छत्तीसगढ़ी से रायपुर और दुर्ग जिले की ठेठ छत्तीसगढ़ी का स्वाद लिया जा सकता है। आज भी राजधानी की छत्तीसगढ़ी अपनी विशिष्ट-शैली के लिए चर्चित है। पं. सुंदरलाल शर्मा की तत्कालीन अनेक साहित्य-मनीषियों से मित्रता और निरंतर पत्र-व्यवहार भी यह जानकारी देता है कि पं. शर्मा राजनीति, समाज-सेवा और साहित्य तीनों क्षेत्रों में बराबरी से समय देते थे। नए रचनाकारों के लिए वे प्रेरणास्रोत बने रहेंगे।

❖

छत्तीसगढ़ी-स्वाभिमान के गौरव

■ नन्दकिशोर तिवारी

पं. सुंदरलाल शर्मा मूलत: कवि थे। कवि सपने देखता है, पं. सुंदरलाल शर्मा ने भी सपना देखा था। उन के सपने में छत्तीसगढ़ प्रांत और छत्तीसगढ़ी-भाषा का विपुल साहित्य भंडार था। अपने सपने को साकार रूप देने के लिए उन्होंने सतत साधना की। उन्होंने खूब लिखा, उन्हीं के शब्दों में "किसी भी प्रांत में मातृभाषा का प्रचार स्वाभाविक प्रेम और श्रद्धा के कारण शीघ्र हो सकता है। क्या इतने पर भी हमारे प्रांत के विद्वान लोग अपनी अविद्या, अंधकारग्रसित छत्तीसगढ़स्थ भाइयों में विद्या का प्रचार करने और अच्छे भावों को भरने में छत्तीसगढ़ी-भाषा के साहित्य भंडार की श्रीवृद्धि में अपनी शक्ति का कुछ भी सदुपयोग न करेंगे। हम भी चाहते हैं कि राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो, परंतु प्रांतीय भाषा की उन्नति के उद्योगों के बिना विश्व शिक्षा का सर्वतोन्मुखी प्रचार होना कोरी कल्पना मात्र है। भारतवर्ष के अन्य भागों की तुलना में इस प्रांत (छत्तीसगढ़) का बहुत पीछे रहने का मूल कारण मातृभाषा (छत्तीसगढ़ी) के साहित्य का अभाव ही है।" हम देखते हैं कि उनके सपनों का छत्तीसगढ़ राज्य बना किंतु छत्तीसगढ़ी भाषा को लेकर जद्दोजहद जारी है।

पं. सुंदरलाल शर्मा जीवन-पर्यंत राज्य अथवा प्रशासन में ग्रामीण प्रतिनिधित्व को लेकर संघर्ष करते रहे। विभिन्न कमेटियों के गठन को लेकर उन के समय में भी चुनाव होते रहे हैं। पं. रविशंकर शुक्ल शहरी प्रतिनिधि हुआ करते थे। पं. सुंदरलाल शर्मा गाँव का प्रतिनिधित्व करते थे। उन्होंने हर बार पं. रविशंकर शुक्ल को चुनावों में चुनौती दी। यहाँ तक कि अपने मितनहा भाई स्व. महंत लक्ष्मीनारायण दास जो चुनाव में पं.रविशंकर शुक्ल का प्रतिनिधित्व कर रहे थे के विरूद्ध स्व. जगताप को चुनाव समर में उतारा। यह एक अलग बात है कि वे शहरी जोड़-तोड़ के कारण पराजित होते रहे किंतु अपने सिद्धांतों पर अड़े रहे। यदि इस संदर्भ में वर्तमान राजनीति को देखें तो यह लड़ाई कमोबेश छत्तीसगढ़ में आज भी जारी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह लड़ाई जहाँ राजनीति के केन्द्र में है, वहीं भाषा के क्षेत्र में भी लड़ी जा रही है।

पं. सुंदरलाल शर्मा ने छत्तीसगढ़ी समाज के प्रत्येक वर्ग और जातियों के उत्थान के लिए कार्य किया। श्री केयूर भूषण बताते हैं कि रायपुर में 'कुर्मी छात्रावास' के निर्माण में उनकी अहम भूमिका थी। श्री भोला कुर्मी की जमीन तो थी परंतु भवन

निर्माण के लिए पहला दान पं. सुंदरलाल शर्मा ने दिया था। उद्देश्य केवल इतना था कि छत्तीसगढ़ के बच्चों जो उच्च अध्ययन के लिए रायपुर आते हैं उन्हें आवास और भोजन की सुविधा मिले। उन्होंने सतनामी समाज और अन्यान्य समाजों को संगठित कर उत्थान की दिशा देने के लिए उनका सामाजिक संगठन तैयार किया। ब्राह्मण समाज भी अछूता नहीं रहा। राजिम में संस्कृत पाठशाला और ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना इसके प्रमाण हैं। सर्वाधिक उल्लेखनीय काम वृहद् सतनामी समाज के अछूतोद्धार का था। उन्हें यज्ञोपवीत धारणा करवाना, मंदिरों में पूजापाठ का हक दिलवाना, आदि इन में प्रमुख थे।

महात्मा गाँधी को अपमान अपनों से झेलना नहीं पड़ा, अपनों के द्वारा किया गया अपमान असहनीय होता है। पं.सुंदरलाल शर्मा ने अपने समाज, अपने लोग, अपने परिवार के बहिष्कार और अपमान को झेला। भक्तियुग में इस के उदाहरण कबीर ही मिलते हैं और हमारे युग में पं.सुंदरलाल शर्मा। आप भी सोचिए आप अपनी जाति के पंगत में खाने के लिए बैठने जा रहे हैं और आपके पंगत में बैठते ही जाति के लोग आपके कारण पंगत का बहिष्कार कर दें तब आपको कैसा लगेगा ? यह यातना कितनी बड़ी होगी ? इसे झेलना सामान्य मनुष्य के वश की बात नहीं है। इसे वही सह सकता है जो सामान्य है जो सामान्य मनुष्य से ऊपर और ऊपर हो।

यह सब दर्शाता है कि पं. सुंदरलाल शर्मा 'छत्तीसगढ़ी-समाज' जिस में अनेक जातियाँ शामिल हैं, सब को जगाने का उपक्रम रच रहे थे। उन में शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान का प्रकाश फैलाकार, उनके भविष्य का प्रारूपण कर रहे थे। उन की कोशिश समग्र रूप से छत्तीसगढ़ी समाज की सामूहिक 'जातीय-चेतना' को रूप देना था। उनकी अस्मिता को, उसकी भाषा, छुआछूत विहीन रहन-सहन, जीवन-शैली के माध्यम से पहचान देना था।

राजनीति के क्षेत्र में अन्याय के विरूद्ध संघर्ष में कंडेल नहर, जंगल सत्याग्रह का आंदोलन आदि का स्मरण हो आता है। परंतु राष्ट्रीय विद्यालयों तथा स्वदेशी वस्तुओं की दुकानों की स्थापना संघर्ष का दूसरा किंतु महत्वपूर्ण पहलू है। इन दोनों कार्यों ने जहाँ एक ओर स्वेदश प्रेम को जगाया, वहीं दूसरी ओर राष्ट्र-भक्ति से ओत-प्रोत युवकों को जन्म दिया। इस समूचे कार्य में शर्मा जी की संपत्ति बिकती गई। तीन गाँव का गौटिया और बाइस गाँवों का मालगुजार आर्थिक रूप से कंगाल हो गया। रही-सही बारह एकड़ जमीन भी नीलामी के परवान चढ़ गई। उसे बचाने के लिए पं.

रविशंकर शुक्ल ने 'शर्मा राहत कोष' की स्थापना की। राशि पं. सुंदरलाल शर्मा तक पहुँच गई परंतु स्वाभिमानी ने सहायता कबूल नहीं की और अपनी रही-सही जमीन कुर्क होने दी। जो कुछ था वह देश का था, समाज का था, उसी को समर्पित हो जाने दिया।

पं. सुंदरलाल शर्मा के जीवन की उपरोक्त घटनाओं के स्मरण का उद्देश्य हमारे वर्तमान परिदृश्य में उन के कृतित्व और विचारों की प्रासंगिकता की तलाश करना है। मुझे तो लगता है कि छत्तीसगढ़ प्रांत की भाषा छत्तीसगढ़ी, छत्तीसगढ़ी समाज को जात-पात, छुआछूत की भावना से अलग कर उनके जातिगत वैशिष्ट्य को यथासंभव, यथावत् रखते हुए 'छत्तीसगढ़ी जातीय-चेतना' और गौरव की प्रतिष्ठापना, राजनीति में सद्भाव, सामान्य जन में राष्ट्रीयता का उन्मेष, छत्तीसगढ़ के जातीय एवं पैतृक शिल्प कौशल की रक्षा, आदि ऐसे तत्व हैं जिसे पं. सुंदरलाल शर्मा ने स्थापित करने का प्रयास अपने जीवन-काल में किया था। संभवत: ये ही ऐसे तत्व हैं जिसके सहारे हमारा आज का छत्तीसगढ़ विकास के शिखर को छू सकता है। इन्हीं सब संदर्भों में पं. सुंदरलाल शर्मा आज भी अत्यधिक प्रासंगिक हैं।

❖

कभी-कभी पैदा होते हैं पंडित सुन्दरलाल

■ डॉ. चित्त रंजन कर

अत्याचार फेंक देता है जब धरती पर जाल
दुर्जन इठलाते हैं, सज्जन हो जाते बेहाल
मानवता की रक्षा करने को जो बनते ढाल
कभी-कभी पैदा होते हैं पंडित सुन्दरलाल

अपने घर-परिवार के लिए सभी जोड़ते माल
औरों की पीड़ा से पीड़ित जिनका हृदय विशाल
दलितों और शोषितों का रखते जो हरदम ख्याल
कभी-कभी पैदा होते हैं पंडित सुन्दरलाल

बेटों की करनी से ऊँचा होता माँ का भाल
तन-मन-धन से माँ की सेवा का व्रत कठिन सवाल
जिनकी त्याग-तपस्या से लज्जित हो जाता काल
कभी-कभी पैदा होते हैं पंडित सुन्दरलाल

जिनके पानी में दुश्मन की कभी न गलती दाल
ऐसे क़दमों के पीछे सब चलें मिलाते ताल
युगनिर्माता, युग के नेता, माँ के सच्चे लाल
कभी-कभी पैदा होते हैं पंडित सुन्दरलाल

जिनकी वाणी जनकल्याणी जिसकी नहीं मिसाल
आलोकित करती सबका पथ ऐसी दिव्य मशाल
सत्यव्रती जो कर्मवती जो, नहीं बजाते गाल
कभी-कभी पैदा होते हैं पंडित सुन्दरलाल

'छत्तीसगढ़ी दानलीला' ने ऐसा किया कमाल
देश-प्रेम का ध्वज फहराया शहर-गाँव-चौपाल
जिनका मन था हिमगिरि-सा ऊँचा, दृढ़ और विशाल
कभी-कभी पैदा होते हैं पंडित सुन्दरलाल

जो कुछ कहा, उसे ही करने वाले सुन्दरलाल
सत्य के लिए कभी न डरने वाले सुन्दरलाल
मातृभूमि की पीड़ा हरने वाले सुन्दरलाल
मरकर सचमुच कभी न मरने वाले सुन्दरलाल

दलित-पीड़ितों के उद्धारक पंडित सुन्दरलाल
त्याग तुम्हारा हृदयविदारक पंडित सुन्दरलाल
छत्तीसगढ़-महिमा-विस्तारक पंडित सुन्दरलाल
दिव्य अमरता तुम्हें मुबारक पंडित सुन्दरलाल

जिनका हृदय पवित्र जिस तरह प्रभु-पूजा की थाल
कीर्ति स्वयं जिसको पहनाया करती है जयमाल
ऐसी मनती रहे जयंती जिनकी सालों-साल
कभी-कभी पैदा होते हैं पंडित सुन्दरलाल

❖

छत्तीसगढ़ी के आदिकवि पं. सुंदरलाल शर्मा एवं 'दानलीला'

■ मुकुंद कौशल

छत्तीसगढ़ी की काव्य-यात्रा वस्तुतः लोकगीतों से आरंभ होती है। अज्ञात लोकगीतकारों एवम् पाठ-परंपरा के मौखिक वाहकों का प्रयास इसे निरंतर आगे बढ़ाता रहा, किंतु छत्तीसगढ़ी के लिखित एवं प्रकाशित रूप में जिस प्रामाणिक कृति का उल्लेख हमें मिलता है, वह राजिम निवासी पं. सुंदरलाल शर्मा द्वारा रचित खण्डकाव्य 'दानलीला' ही है। यह छत्तीसगढ़ी का एक ऐसा परिपक्व खण्डकाव्य है जो बाद में छत्तीसगढ़ी सृजन धर्मियों के लिए एक पुख्ता आधार व प्रेरणा-स्रोत बन गया। 'दानलीला' वास्तव में छत्तीसगढ़ी भाषा की अभिव्यक्ति-क्षमता का जयघोष है।

लीलापरक काव्य होने के कारण इसमें तत्कालीन लोकव्यहार एवम् सामाजिक मूल्यों-मान्यताओं का विस्तृत परिचय मिलता है। कृष्ण की अनेक लीलाओं में 'दानलीला' (कर वसूली) का प्रसंग अत्यंत रोचक है। कवि ने छत्तीसगढ़ में व्याप्त लोकगीतों के विविध छंदरूपों को आधार न बनाकर हिंदी के भक्तिकालीन छंदों को आधार बनाया। दोहा, चौपाई तथा कवित्त की सुघड़ भंगिमाएँ इसमें व्यापक रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। इस काव्य की अनेक विशेषताओं में एक प्रमुख विशेषता यह है कि कृष्णभक्तिपरक प्रेमकाव्य होने के उपरान्त यह कहीं से भी भक्तिकालीन कवियों की रचनाओं का रूपान्तरण या अष्टछाप के रचनाकारों के पदों की अनुकृति-सा नहीं लगता, बल्कि छत्तीसगढ़ी भाषा में ही परिकल्पित एक मौलिक कृति-सा प्रतीत होता है।

'दानलीला' में कृष्ण-गोपिकाओं का परस्पर-संवाद ऐसा तरल व चुटीला बन पड़ा है कि पाठक, न केवल उसमें रम जाता है, बल्कि उसके समक्ष एक साकार दृश्य-सा उपस्थित हो जाता है। गेयता दानलीला का वह आकर्षक गुण है, जो इसे मंचन की क्षमता प्रदान करता है। मनोभावनाओं के साथ इसमें यथार्थपरक संदर्भ भी प्रेमातिरेक के साथ मानवीय व्यवहार की समस्त वृत्तियों का समावेश इस काव्य को व्यापक बनाता है। भिन्न-भिन्न काव्य-रसों की निष्पत्ति तो इसमें हुई ही है, शिल्पगत

अन्य विशेषताओं में छंदगत परिपक्वता बिम्बों की विविधता भी इस बात की घोषणा है कि यह एक अद्वितीय संरचना है।

एक भक्तिकाव्य होते हुए भी इसमें शृंगार, रूपवर्णन, छेड़छाड़, मूल्य आधारित तर्क, एवं वयः संधि काल की देहयष्टि के प्रति एक निर्विकार आकर्षण के अतिरिक्त ज्ञान-वैराग्य के बिम्बों का सजीव चित्रण भी है, जो इसे वर्तमान काल में भी प्रासंगिक बनाता है। निश्चय ही इस काव्य को छत्तीसगढ़ी कविता का स्वस्फूर्त विकास और प्रथम आलोक-स्तम्भ कहा जाना चाहिए।

कृष्णकाव्य में भक्तिरस शृंगार की पीठिका पर ही विकसित हुआ है, अतः कृष्ण के साथ गोपियों के संवादों में निहित मीठी भिड़कियाँ व मुहावरे इसे लालित्य प्रदान करते हैं। छत्तीसगढ़ की वेशभूषा व आभूषणों के वर्णन में कृतिकार को अपूर्व सफलता मिली है। छत्तीसगढ़ी की परिष्कृत और हृदयस्पर्शी भाषा में रचित 'दानलीला' में भावात्मकता एवं रसानुकूलता दोनों भरपूर हैं। अलंकारों की छटाएँ भी इस काव्य को अद्वितीय सिद्ध करती हैं । शब्द-चयन, भाषा-माधुर्य, अर्थ-व्यंजकता और काव्योपयुक्त दृश्यांकन के साथ लाक्षणिक एवं भावात्मक उक्तियों का बाहुल्य भी इसे प्रभावोत्पादक बनाता है।

समाज-सुधारक, चित्रकार, मूर्तिकार, नाटककार, साहित्यकार, एवम् प्रखर सुधारवादी विचारक पं. सुंदरलाल शर्मा के संबंध में विशद अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि राष्ट्रभाषा के रूप में यों तो वे हिंदी के ही पक्षधर थे, किंतु छत्तीसगढ़-निवासियों की अविधा-अंधकार को दूर करने के लिए वे छत्तीसगढ़ी को शिक्षा का माध्यम बनाने के पक्षधर थे।

'दानलीला' के विषय में स्व. डॉ. नरेंद्रदेव वर्मा ने अपनी पुस्तक "छत्तीसगढ़ की विभूतियाँ एवं लौकिक प्रसून" में लिखा है कि पं. सुंदरलाल शर्मा, आधुनिक छत्तीसगढ़ी के पुरोधा एवं पुरस्कर्ता हैं, क्योंकि सर्वप्रथम उन्होने ही छत्तीसगढ़ी बोली को ग्राम्यभाषा पद से उठाकर साहित्यभाषा पद पर अधिष्ठित किया और उसे मानवीय मनोभावों के संवहन-योग्य प्रत्यास्थता प्रदान की।

पं. सुंदरलाल शर्मा द्वारा रचित 24 कृतियों में से 'दानलीला' का विषय नवीन न होते हुए भी अपनी काव्यगत विशेषताओं के कारण सर्वथा नवीन है। यहाँ डॉ.

सविता मिश्र का यह कथन भी समीचीन होगा, कि "ठेठ छत्तीसगढ़ी में लिखित अमरकृति 'दानलीला' के कारण ही छत्तीसगढ़ी भाषा एवम् साहित्य के इतिहास में पं. सुंदरलाल शर्मा का नाम स्वर्णाक्षरों से लिखा जाएगा।"

सन् 1905 में लिखित इस अद्भुत कृति का मुद्रण कलकत्ता में बाबू रामप्रताप भार्गव के नरसिंह प्रेस में सन् 1906 में किया गया। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यह कालखण्ड और यह कृति पं. सुंदरलाल शर्मा को छत्तीसगढ़ी का आदि कवि घोषित करती है। सन् 2005 'दानलीला' का शताब्दी वर्ष है।

❖

छत्तीसगढ़ का नवजागरण और दानलीला

■ डॉ.गोरेलाल चंदेल

भारतीय नवजागरण की हवा समूचे देश में चल रही थी। छत्तीसगढ़ भी इस हवा से अछूता नहीं रहा। नवजागरण के कारण 18 वीं, 19 वीं, तथा 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक तीन-चार दशकों में आर्थिक परिस्थितियाँ बदल रही थीं। गाँव अब एक आर्थिक इकाई न होकर अन्य गाँवों तथा शहरों के साथ जुड़ रहा था। अँग्रेज़ों की कूटनीति के कारण उनके घरेलू उद्योग टूट रहे थे और कृषि पर उनकी निर्भरता बढ़ रही थी। ज़मींदारी-प्रथा मज़बूत हो रही थी और गाँवों में गौटिया, मालगुज़ार तथा मण्डलों का शोषण बढ़ रहा था। विकास के सारे लाभ इन्हीं तक आकर समाप्त हो रहे थे। आम लोगों के जीवन में कोई खास परिवर्तन नहीं दिखाई दे रहा था। छत्तीसगढ़ गाँवों की स्थिति इससे भी बदतर दिखाई दे रही थी। शिक्षा की सुविधाएँ गाँव तक नहीं पहुँच पा रही थीं। 10-20 मील में एक प्राथमिक शाला होती थी और उसमें पारंपरिक शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी। सामाजिक व्यवस्था में वर्णवाद और जातिवाद का बोलबाला था। छुआछूत की भावना मध्यकाल की तरह थी। फलस्वरूप निम्न जाति के लोग शोषण के अधिक शिकार थे। ग्रामीण लोगों में चेतना जाग्रत करने तथा ग्रामीणों के अधिकार के लिए ज़मीन तैयार करने वाले प्रेस और पत्रकारिता की स्थिति लगभग शून्य थी। गाँव की पंचायत आधुनिक लोकतंत्र के एजेन्सी के रूप में काम नहीं कर रही थी, वरन् उनका रूप गाँव की छोटी-मोटी समस्याओं को सुलझाने तथा दाल-भात तक सीमित थी। समाज में नारी की स्थिति दोयम दर्जे की थी। पुरुष पर आश्रित होने के कारण क़दम-क़दम पर पुरुष के अत्याचार को सहन के लिए नारियाँ विवश थीं। बंगाल और उत्तर भारत में तेज़ी से विकसित होने वाले नारी-आंदोलन का प्रभाव छत्तीसगढ़ में कम ही दिखाई दे रहा था।

उपर्युक्त परिस्थितियों के बीच छत्तीसगढ़ के ठेठ गाँव में पं. सुन्दरलाल शर्मा का जन्म हुआ। होश सँभालते ही उनके सामने बदहाल छत्तीसगढ़ था। छत्तीसगढ़ की ग्रामीण ज़िंदगी में थके-हारे, फिर भी अपनी ज़िंदगी की ऊर्जा को बचाए रखने वाले मेहनत और माटी में लिथड़े हुए किसान थे; शिक्षा से वंचित नंग-धड़ंग बच्चे थे; खेत-खलिहान और चूल्हे-चौके में अपनी अस्मिता तलाशती नारियाँ थीं; उपेक्षित, तिरस्कृत, और अछूत होने की त्रासदी भोगते निम्न जाति के लोग थे। भारतीय

नवजागरण का संदेश इन लोगों तक पहुँचाने की ज़िम्मेदारी को पं. सुंदरलाल शर्मा ने अपनी व्यक्तिगत और सामाजिक ज़िम्मेदारी के रूप में स्वीकार किया। हरिजनों और अछूतों को सामाजिक सम्मान दिलाने तथा उनके जातिवादी शोषण के चक्र को रोककर उन्हें ज़िंदगी के सामाजिक, आर्थिक मुकाम तक पहुँचाने की चुनौती उनके सामने थी। उन्होने इस चुनौती को स्वीकार करते हुए सही माने में छत्तीसगढ़ के गाँधी की सार्थकता सिद्‌ध की।

मिथ की पुनर्रचना हर युग में होती रही है। पुनर्रचना के दौरान मिथ का युगीन सत्य संदर्भित होता रहता है। मिथ का अर्थान्तरण भी युग और काल के अनुसार होता है। मिथ की कथा तो वही रहती है, किन्तु मूल कथा के साथ रचनाकार के समय का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक इतिहास भी आकार लेते हुए चलता है। इतिहास और मिथ का यही द्वन्द्व है। यही रचना के विकास का क्रम है और यही रचना की समय-सापेक्षता भी है। इसके अभाव में मिथ बेजान गाथा में रूपान्तरित हो जाता है और उसका समाजशास्त्र शून्य होने लगता है। यही वजह है कि मिथ की पुनर्रचना के समय रचनाकार को अतिरिक्त सावधानी की आवश्यकता पड़ती है, जिससे मिथ में अपने समय के इतिहास को सावधानीपूर्वक पिरो सके, मिथ को एक नया रूप दे सके, तथा मिथ की अर्थ-व्यंजना को समय के सच के अनुरूप व्यंजित कर सके।

कृष्ण का मिथ पौराणिक इतिहास में सर्वाधिक ऊर्जावान मिथ रहा है। कृष्ण के मिथ में अध्यात्मिकता की अपेक्षा सामाजिकता अधिक दिखाई देती है। उनके ईश्वरीय रूप पर मानवीय रूप अधिक प्रबल दिखाई देता है। कपोल-कल्पित कथा के स्थान पर युग-युग का सामाजिक सच एवं ज़िंदगी का सच अधिक मुखर दिखाई देता है। समाज-विरोधी तत्वों के विरुद्ध चेतना पैदा करने तथा विरोध के लिए सामूहिक शक्ति को जाग्रत कर अन्याय का प्रतिकार करने के लिए निरंतर संघर्ष करने वाले कृष्ण हमारे अपने बीच के जननेता प्रतीत होने लगते हैं। हर युग में कृष्ण के मिथ को इसी प्रकार अर्थान्तरित किया गया है। समाज-विरोधी प्रतिगामी शक्तियों के विरोध के बिना सामाजिक विकास की परिकल्पना खोखली होगी। यह भी सही है कि समाज-विरोधी तत्वों का विरोध कोई अकेला नायक नहीं कर सकता, चाहे वह ईश्वर का अवतार ही क्यों न माना जाए। उन्हें ऐसे विरोधी तत्वों पर सफलता पाने के लिए समाज की सामूहिक शक्ति को जगाना ही पड़ता है। यही वजह है कि जब-जब सामाजिक

अन्याय के विरुद्ध मोर्चा खोला जाता है, तब-तब रचनात्मक क्षेत्र में कृष्ण के मिथ की पुनर्रचना समाज की सामूहिक चेतना को जाग्रत करने की अर्थ-व्यंजना के साथ होती है।

कृष्ण के मिथ पर पं. सुंदरलाल शर्मा द्वारा लिखित छत्तीसगढ़ी 'दानलीला' भारतीय नवजागरण के संदेश को छत्तीसगढ़ के लोगों तक पहुँचा कर उनमें जागरण की चेतना पैदा करने का अभिनव प्रयास है। तत्कालीन छत्तीसगढ़ी समाज में एक ओर प्रतिगामी शक्तियाँ सामाजिक रूढ़ियों और जातिवादी सामाजिक संरचना की जड़ों को मज़बूत करने के लिए जन-संस्कृति के पतनशील तत्वों को संरक्षित करने में अपनी पूरी ताक़त लगा रही थीं, तो दूसरी ओर पूँजीवादी विदेशी ताक़तें देश की अर्थ-व्यवस्था को नष्ट करने तथा अपनी बाज़ारवादी व्यवस्था को मज़बूती प्रदान करने में अपनी शक्ति लगा रही थीं। देश-विदेश में अपनी कलात्मकता का सिक्का जमाने वाले कुटीर एवं घरेलू उद्योगों को अँग्रेज़ों द्वारा प्रयासपूर्वक नष्ट किया जा रहा था। भारतीय भाषा एवं भारतीय संस्कृति के विकासशील ऊर्जावान तत्वों को विदेशी संस्कृति से विस्थापित किया जा रहा था। धार्मिक क्षेत्रों में कठमुल्लापन को बढ़ावा दिया जा रहा था। मानव-अस्मिता और मानवीय स्वतंत्रता को पैरों तले रौंदा जा रहा था। ऐसे समय 'दानलीला' छत्तीसगढ़ के थके-हारे लोगों में नई ताक़त और जोश पैदा करने का कार्य करती है।

'दानलीला' के माध्यम से पं. सुंदरलाल शर्मा ने छत्तीसगढ़ में समूहवादी चेतना का बिगुल फूँका था। इसके लिए उन्होने सोद्देश्य कृष्ण के मिथ का चयन किया। 'दानलीला' की गोपियाँ कृष्ण का प्रेम पाने के लिए गोकुल की गलियों तक जाने के प्रयास में भी सामूहिक चेतना से युक्त दिखाई देती हैं। आश्चर्य है कि प्रेम में व्यक्तिनिष्ठता, एकात्मकता, एवं संकुचन के सारे सिद्धांतों को अर्थान्तरित करते हुए समष्टिवादिता, सामूहिकता, एवं विस्तार की चेतना छत्तीसगढ़ की धरती पर अंकुरित करने का पं. सुंदरलाल शर्मा का प्रयास राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान दिखाई देने वाले राष्ट्रीय नवजागरण का ही हिस्सा है। गोपियाँ एक दूसरे से कहती हैं कि -

"मिलि के कभू गोकुल जातेन ओ
मन के मरजी ला बतातेन ओ
दुख और सुख ला गोठियातेन ओ
घर साँझक ले फिर आतेन ओ "

इसमें व्यक्तिगत प्रेम की गर्मी दूर-दूर तक दिखाई नहीं देती, वरन् सामूहिक रूप से उस शक्ति को देखने, उसे समझने की ललक है, जो समाज-विरोधी तत्वों के विरुद्ध बचपन से संघर्ष कर रहा है। उससे जुड़ने और उससे सामाजिक ऊर्जा ग्रहण करने की कामना ही इन पंक्तियों की व्यंजना में छिपी हुई है -

"बेच देतेन खीर बेचातिस तो
कन्हैया ला खवातेन खातिस तो
लेवना बने लाल ला देतेन वो
लाहो ला जिंदगी के ले लेतेन वो"

राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की इस समूहवादी चेतना का दूरगामी सामाजिक अर्थ का स्वर 'दानलीला' में साफ़-साफ़ सुनाई देता है। यह मात्र मनोरंजक न होकर अपने राष्ट्रीय-सामाजिक उद्देश्यों के निहितार्थ में सफलतम छत्तीसगढ़ी खण्ड-काव्य है। यही वजह है कि स्थान-स्थान पर इस काव्य में राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े हुए शब्दों और मुहावरों का प्रयोग दिखाई देता है -

"चरखा सरिख तमिच ले गिजरेत हे मन मोर
कंसराय के राज में करो न ऐसन काम
घुसड़ अभीजाही सबो वनेव जगाती श्याम"

वस्तुतः कंस का समाज-विरोधी, जन-विरोधी राज अपने प्रतीकात्मकता में अँग्रेज़ों का ही शासन है, जहाँ आमजन तरह-तरह के टैक्सों (जगात) के भार से दबा जा रहा था। उन टैक्सों (जगातों) का विरोध 'दानलीला' में गोपियाँ करती है। नारी-चेतना का यह बेमिसाल संदेश पं. सुंदरलाल शर्मा 20 वीं शताब्दी के दूसरे दशक में छत्तीसगढ़ के लोगों को 'दानलीला' के माध्यम से देते हुए दिखाई देते हैं। इतना ही नहीं, पूँजीवादी साम्राज्यवाद के अन्याय और आतंक पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था से छत्तीसगढ़ के आम लोगों को भय-मुक्त अँग्रेज़ी हुकूमत का खुलकर विरोध तथा शीघ्र समाप्त होने का संदेश पं. शर्मा का बेहद आशावादी संदेश रहा है -

"इहाँ कंस ला कउन डेराथे
अइसन कंस हजारों आथे,
चूँदी धर के अभी पछारों
चोंगी पीयत भरे में मारों"

19 वीं-20 वीं शताब्दी में भी हिन्दुस्तान की सामाजिक व्यवस्था वर्णाश्रम-व्यवस्था रही है। समाज की जातिवादी संरचना भले ही मध्यकाल की तरह कठोर न रही हो, किंतु उसमें जातिवादी रूढ़िबद्धता अभी भी अमरबेल की तरह छाई हुई थी और बिना सैद्धांतिक आधार के सामाजिक हरियाली को सुखाने में लगी हुई थी। साम्राज्यवादी शक्तियों ने इस व्यवस्था को जीवित रखने की पुरज़ोर कोशिश की, जिससे रूढ़िवादी समाज आपस में बँटा रहे उसमें सामूहिक चेतना का संचार न होने पाए। छत्तीसगढ़ की जातिवादी-सामाजिक व्यवस्था में ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, छुआ-छूत, सामाजिक सम्मान और सामाजिक तिरस्कार एवं घृणा का जाल फैला हुआ था। भारतीय नवजागरण काल में इस व्यवस्था को तोड़ने का प्रयास नवजागरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य था। महात्मा गाँधी इस कार्य को संपन्न करने में सबसे आगे थे। किन्तु छत्तीसगढ़ में महात्मा गाँधी के आगमन के पूर्व ही पं. सुंदरलाल शर्मा ने इस कार्य को अंजाम देना शुरू कर दिया था। उच्च ब्राह्मण जाति का होने के बाद भी उन्होंने समाज के सर्वाधिक तिरस्कृत और उपेक्षित हरिजनों के बीच जाकर कार्य किया और उनके भीतर की जातिगत हीन भावना को दूरकर उन्हें समाज एवं राष्ट्र की मूलधारा से जोड़ने का अथक प्रयास किया। जनेऊ नाम के जिस धागे को ब्राह्मणत्व एवं क्षत्रित्व का प्रतीकात्मक सामाजिक आधार बनाया गया था, हरिजनों को भी जनेऊ पहनाकर उन्होंने पूरी उच्च जातीय सामाजिक व्यवस्था में खलबली मचा दी। इसके लिए उन्हें रूढ़िवादी, ब्राह्मणवादी समाज की प्रताड़ना भी झेलनी पड़ी, किन्तु उन्होंने हरिजनों में सामाजिक चेतना जाग्रत करने के कार्य से पीछे पाँव नहीं दिया। इतना ही नहीं, वे सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर नवजागरण की धारा से जुड़ने का निंरतर संदेश देते रहे। अपने-अपने समाज (जाति) के संकुचित घेरे को तोड़कर एक नए समाज की संरचना में आगे आने का आह्वान करते रहे। 'दानलीला' में तो वे रूढ़ियों को अभिसिंचित करने वाली 'रौताइनों' से जातीय व्यवस्था को तोड़कर आगे आने का स्वर मुखरित करते हैं -

"जात सगा डर छाड़िके, धरिहौ मोहन पांव
चलो आज चलबों गोई वृन्दावन के बात
दही बेचबो जाय के, मथुरा जी के घात"

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ ही साथ भारतीय समाज की पारंपरिक-सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन के संकेत दिखाई देने लगे थे। वर्णवादी व्यवस्था वर्गवादी व्यवस्था में रूपान्तरित होने लगी थीं। छत्तीसगढ़ की सामाजिक व्यवस्था में दोनों बातें

साथ-साथ दिखाई देने लगी थी। समाज की वर्णवादी-जातिवादी व्यवस्था के पत्ते पीले पड़ने लगे थे। उसकी हरियाली में शिथिलता दिखाई पड़ने लगी थी, किंतु पूरी तरह उसके पत्ते झड़े नहीं थे, अभी भी अपनी साख से मज़बूती से जुड़े हुए थे। वर्णवादी व्यवस्था के स्निग्ध, चमकदार फल कहीं-कहीं अपनी उपस्थिति दर्ज करवाने में लगे हुए थे। वर्णवाद वैश्विक संस्कृति का हिस्सा रहा है, इसलिए उसका प्रभाव छत्तीसगढ़ के समाज में भी दिखाई देने लगा था, किंतु यह बात बहुत स्पष्ट दिखाई दे रही थी कि स्वर्ण धनिकों की अपेक्षा अछूत संपन्नों की सामाजिक हैसियत अलग थी। 'दानलीला' में इस हैसियतवाद को कोसने से रौताइने नहीं चूकतीं। वे कृष्ण को उलाहना देते हुए कहती हैं कि 'दू कोरी' गाय होने की डींग में चूर होने के कारण मानवीय व्यवहार भूल गए हो। संपन्नता के साथ मनुष्य के व्यवहार में आने वाले परिवर्तन को लक्ष्य करके ही रौताइन इस तरह की कटाक्ष करती है -

"दू कोरी गेरुआ के मारे, आँखी भइस बेलन्द तुम्हारे
छो -छो करके गाय चरावे, राजा कहत लाज नई आवे "

पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में नारी की सामाजिक स्थिति लगभग दासी की तरह रही है। पुरुष-वर्ग नारी का कहीं अकेले जाना, पर-पुरुष के साथ गोठियाना-बतराना, बताना, पर-पुरुष से हँसी-मज़ाक करना कभी बर्दाश्त नहीं करता, चाहे पुरुष पति या पिता, भाई हो या अन्य कोई रिश्ता। नारी के चरित्र पर ऊँगली उठाना वे अपना अधिकार मानते हैं। छत्तीसगढ़ में पर्दा-प्रथा न होने के बाद भी कमोबेश स्थिति ऐसी ही थी। तभी तो रौताइने कहती हैं -

"हाँ हाँ घुँचो अभी रोको मत,
डौकी मन के कतका इज्जत
डौका जात आव तुम टूरा
फूटे बर चूरी न चूरा
घर माँ दाई गारी दैहे
बँधवा एकक लेखा लेते "

"समाजशास्त्रीय दृष्टि से इसमें तत्कालीन समाज का लघु, किन्तु एक स्पष्ट चित्र मिलता है। (छत्तीसगढ़ी दानलीला-एक मूल्यांकन,डॉ.चित्तरंजन कर का पृ. 13)

20 वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में स्वदेशी बनाम, विदेशी, अर्थात् विदेशी

वस्तुओं के स्थान पर स्वदेशी वस्तुओं का नारा हिन्दुस्तान की सरज़मीं पर बहुत तेज़ी से बुलंद हो रहा था। छत्तीसगढ़ के खेत-खलिहान और नदी-पहाड़ भी स्वदेशी के रंग में छत्तीसगढ़ को रँगने वाले सबसे अगली पंक्ति के नेता थे। "सन् 1906 से पं. सुंदरलाल शर्मा स्वदेशी आंदोलन से जुड़े थे (छत्तीसगढ़ कविता पर लोक संस्कृति का प्रभाव अप्रकाशित शोध-प्रबंध , डॉ. जीवन यदु पृ. 59) संस्कृति के क्षेत्र में स्वदेशी और विदेशी का द्वन्द्व सबसे अधिक दिखाई दे रहा था। मध्य वर्ग की युवा पीढ़ी का जहाँ विदेशी संस्कृति के प्रति तेजी से रुझान बढ़ रहा था, वहीं छत्तीसगढ़ की माटी से उसकी सोंधी-सोंधी गंध से अपनी सुगंधित छटा फैलाने वाली संस्कृति गाँव की गलियों में विकसित हो रही थी। उसकी जीवंतता एवं ऊर्जा अपराजेय थी, इसलिए स्वदेशी संस्कृति के प्रति छत्तीसगढ़ के बहुसंख्यक लोगों का मोह स्वाभाविक ही था। खान-पान, वेशभूषा, रहन-सहन, वस्त्राभूषण, आचार-विचार और भाषा-साहित्य में छत्तीसगढ़ियापन उनकी अपनी सांस्कृतिक पूँजी थी। संस्कृति के इस विपुल भण्डार को पहचानने में पं. सुंदरलाल शर्मा की पैनी दृष्टि पूरी तरह कामयाब होती है - "ऐसे में शर्मा जी को ऐसे चरित्र की आवश्यकता थी, जो इस शोषक कंस-व्यवस्था को न केवल पारस्परिक सोच के तहत अपना मुक्तिदाता लगे, वरन् सांस्कृतिक सोच और ग्रामीण परिस्थितियों के मुताबिक भी व्यवस्था के बीच का आदमी लगे। (मड़ई 1991, सं. उमा शंकर, ले जीवन यदु)

'दानलीला' स्वदेशी संस्कृति को विदेशी संस्कृति के तहजीब देने वाला एक अपराजेय खण्डकाव्य है। चाहे कृष्ण का चरित्र हो अथवा राधा एवं गोपियों का। पं. सुंदरलाल शर्मा ने गोपियों के लिए 'रौताइन' संबोधन का प्रयोग किया हैद्य जो छत्तीसगढ़ में दूध,दही का व्यवसाय करने वाली एक जाति-विशेष की महिलाएँ है। 'दानलीला' में यादव-समाज की जीवन-पद्धति सामाजिक, धार्मिक स्थिति, उनके वस्त्राभूषणों, उनके शृंगार-प्रसाधनों में व्यक्त होती है।" छत्तीसगढ़ी दानलीला-एक मूल्यांकन, डॉ. चित्तरंजन कर पृ. 13) छत्तीसगढ़ के रौताइनों की वेशभूषा और साज-शृंगार में छत्तीसगढ़ की पारंपरिक संस्कृति की महक आसानी से महसूस की जा सकती है ।

मोलहा खोपला चुकिया राखिन/तउला ला जोरिन हे सबकिन/दुहना टुकना बीच मड़ाइन /घर घर निकरीन रौताइन।

बाज़ारवाद के क्षेत्र में तत्कालीन छत्तीसगढ़ की ग्रामीण-व्यवस्था में वस्तु-विनिमय की पद्धति प्रचलित रही है। उसके नापतौल की अपनी व्यवस्था होती थी,

जो उनके बाज़ारवाद की संस्कृति का आधार थी। 'मोलहा' - एक परई (मिट्टी की हाँडी के ढक्कन-जैसा) हुआ करती थी। एक मोल अनाज़ पर कितने मोल मही या दही देने की सुनिश्चित परंपरा रही है। इसी तरह खोपला या चुकिया भी दही, दूध बेचने का माप रहा है। संस्कृति के ये उपादान अब धीरे-धीरे ग़ायब हो गए हैं। छटान, पाव, सेर के युग में मोलहा-खोपला-चुकिया की बात पं. सुंदरलाल शर्मा ही कर सकते थे। स्वदेश-प्रेम का ऐसा रूप शायद ही कहीं देखने को मिले।

इसी तरह रौताइनों के पहनावे में छत्तीसगढ़ की लोक-संस्कृति अपनी पूरी भाव-भंगिमाओं के साथ मुखरित होती हुई दिखाई देती है। लंकाशायर के आयातित वस्त्रों के स्थान पर रौताइनों की देह पर सुशोभित देशी-वस्त्रों पर हज़ारों लंकाशायर कुर्बान किए जा सकते हैं। छत्तीसगढ़ की इस सांस्कृतिक गरिमा को बनाए रखने में पं. सुंदर लाल शर्मा की कालजयी भूमिका को भुला पाना संभव नहीं है -

"पहिरे लूगा लाली पियरा/देखत में मोहत हे जियरा/डोरिया पाटल सारि अंचरहा/मेघी चुनरी कोर लगरहा/भुंडा ठिक के सोरा हत्थी/पहिरे रेंगत हे एक सत्थी"

रौताइनों के आभूषण और श्रृंगार सामाग्री का वर्णन करते हुए जब पं. शर्मा रौताइनों का शृंगार करके खड़ा करते हैं, तब लगता है कि छत्तीसगढ़ की संस्कृति ही सोलह श्रृंगार करके पाठक के सामने खड़ी हुई हो। नख से सिर तक स्वदेशी सर्वांग छत्तीसगढ़ी इस संस्कृति शृंगार में सौंदर्य की देशी गंध, रूप का देशजपन, रंग का गवैहापन दूर-दूर तक देखा और महसूस किया जा सकता है-

"पड़री पड़री देह के, रूपस सवे अघात
श्याम मिले के खुशी में कसकसात है जात"

रौताइनों की क़द-काठी में छत्तीसगढ़ का देशीपन अपनी संपूर्ण नृतत्व-शास्त्रीय विशेषताओं के साथ दिखाई देता है -

"कोनों डोगी कोना बुटरी चकरेट्ठी दीखे जस पुतरी
ऐन जवानी उठती सबके पन्द्रा सोला बीस बरस के"

वैसे ही शृंगार सामाग्री में और साज-शृंगार के तौर-तरीक़ों में भी छत्तीसगढ़ की स्वदेशी गंध स्पष्ट महसूस की जा सकती है। काजर आँजना, मूड़ कोरना, पाटी पाटना, पाँव रचाना, पीक खाना, टिकली चटकाना, हेड़गा खोपा, फुँदरी लटकाना, झाबा गथवाना आदि साज-शृंगार के छत्तीसगढ़ी रूप ही हैं। इसी तरह गहनों में देशज

रूप-रंग और आकृति को देखा जा सकता है। पैरी, चूरा, ककनी बहुरंग बिल्लोरी चूरी पिउरा पटली, मुँदरी, खिनवा, लुटकी , झूमका, नथ,बिछिया, चुटकी आदि गहने छत्तीसगढ़ के पारंपरिक गहने रहे हैं। समय के परिवर्तन के साथ आज इन गहनों में से कई को छत्तीसगढ़ में देख पाना संभव भले ही न हो, किन्तु 20 वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में छत्तीसगढ़ के गाँवों में इन गहनों का प्रचलन आम रहा है।

छत्तीसगढ़ में सौन्दर्य को श्रम के भीतर से ही परिभाषित किया जा सकता था। श्रम और सौंदर्य एक दूसरे परिपूरक रहे हैं। यही वजह है कि पं. सुंदरलाल शर्मा ने रौताइनों को सौंदर्य की दही-मही और दूध की टुकनी उठाकर ग्रामीण मार्गों पर चलती हुई नारियों में तलाशने की कोशिश की है -

"लड़ियाँ सूरज के रफ पावे
चकमक चकमक चमकत जावें"

वह सूरज के रफ (सूर्य की तेज़ किरणों) में विकसित होने वाला सौन्दर्य, धूल और मिट्टी से भरे हुए मार्ग पर चलने वाला सौंदर्य, बोझ उठाये रेंगत हाथी चाल का सौंदर्य, गाँव की धूल मिट्टी और धूप सीकर के बीच पैदा होने और विकसित होने वाला सौंदर्य ही हो सकता है। सौंदर्य के इस प्राकृतिक रूप को छत्तीसगढ़ के गाँवों में आज भी देखा जा सकता है, याने पं.सुंदरलाल शर्मा के सौंदर्य की अवधारणा भी देशज रही है ।

❖

पं. सुन्दरलाल शर्मा
का साहित्यिक परिचय

■ डॉ. सत्यभामा आडिल

19वीं एवं 20वीं सदी के संधिकाल में छत्तीसगढ़ के साहित्यिक परिदृश्य में एक अनूठे आशुकवि ने जनकवि की लोकप्रियता प्राप्त की और साहित्य, समाज और राजनीति में चहुँमुखी छाप छोड़कर राष्ट्रीय आंदोलन को गति प्रदान की- उसका नाम है- पं. सुन्दरलाल शर्मा।

पं. सुन्दरलाल शर्मा का जन्म 20 दिसंबर 1881 को राजिम नगर में हुआ एवं देहावसान सन् 1940 में हुआ। पं. सुन्दरलाल शर्मा साहित्यकार के साथ-साथ गंभीर चिंतक, विचारक, स्वप्नदृष्टा, समाजसुधारक, अछूतोद्धार-आंदोलन के सूत्रधार, सत्याग्रही, राजनीतिज्ञ, संस्कृति-प्रेमी, पत्रकार, चित्रकार, मूर्तिकार और नाटककार भी थे।

पं. सुन्दरलाल शर्मा को "छत्तीसगढ़ी गाँधी" भी कहा जाता है। यदि पं. सुन्दरलाल शर्मा ने अपनी पूरी प्रतिभा एवं सर्जना-शक्ति को केवल साहित्य-सृजन में ही लगाया होता, तो छत्तीसगढ़ी भाषा साहित्य अनेक मूल्यवान ग्रंथों से सुसज्जित हो कर समृद्ध होता। सृजनशक्ति के विकेन्द्रीकरण के बावजूद वे छत्तीसगढ़ी के प्रथम सिद्ध कवि माने ज़ाते हैं। उन्होंने छत्तीसगढ़ी भाषा को साहित्यिक रूप देकर पुष्ट और भास्वर किया। ऐसे समय में जबकि ब्रज और अवधी में ही लेखन चल रहा था, उन्होंने छत्तीसगढ़ी को लेखन में प्रयुक्त किया और अलंकारों से सजा दिया।

पं. सुन्दरलाल शर्मा बहुभाषाविद् थे। हिन्दी के अलावा उन्हें संस्कृत, बँगला, उड़िया, मराठी, उर्दू का भी अच्छा ज्ञान था। वे धाराप्रवाह बँगला बोलते थे।

पं. सुन्दरलाल शर्मा ने चार नाटक, एक जीवनी, एक उपन्यास, एक कहानी, पन्द्रह काव्य एवं सैकड़ों स्फुट पदों की रचना कर के हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने छत्तीसगढ़ी भाषा में तीन काव्य-ग्रंथों की भी रचना की है।

पं. सुन्दरलाल शर्मा के साहित्य का विषय विविध आयामों से जुड़ा है। यदि उन्होंने कृष्णभक्ति को 'दानलीला' का विषय बनाया, तो एक सिद्ध रसिक कवि के रूप में किया है। यदि ध्रुव व प्रह्लाद परउनकी लेखनी चलती है, तो वे भक्ति व

माहात्म्य के अगाध सागर में डूबते-तैरते दृष्टिगत होते हैं। यदि वे विक्टोरिया व भूषण पर कलम चलाते हैं, तो चरितावली लिखते दिखाई देते हैं। स्फुट पदों में एक ओर भजन, दूसरी ओर देश की दुर्दशा पर विलाप, तो तीसरी ओर भ्रष्टाचार, सामाजिक विसंगति व जातिपाँति पर प्रहार करते हैं। स्फुटपदों में कई तरह के विषय मिलते हैं। ब्रज और छत्तीसगढ़ी दोनों में पं. सुन्दरलाल शर्मा ने लेखनी चलाई। खड़ी बोली में भी उन्होंने कविताएँ लिखीं और साहित्य की सभी विधाओं में अपने सोपान बनाए। वस्तुत: पं. सुन्दरलाल शर्मा का साहित्य आम मनुष्य से जुड़ा हुआ है। साधारण मनुष्य चेतना से जुड़कर मानवीय संवेदनाओं को और अधिक सुंदर आकार देने की चेष्टा तथा सामाजिक जुड़ाव उनके साहित्य-सृजन की आधारभूमि है। ऐतिहासिक, पौराणिक एवं आख्यानों से जुड़ना भी पं. सुन्दरलाल शर्मा को रुचिकर लगता था। यही कारण है कि कई आख्यानों को उन्होंने काव्यरूप देने का प्रयास किया। ऐसे समस्त चरित्र अपने-अपने सुख-दु:ख के साथ चित्रित किए गए हैं।

केवल 17 वर्ष की आयु में उन्होंने तीन काव्यों की रचना कर डाली। प्रथम काव्य[1] 'श्री राजीव प्रेम पियूष' (सन् 1898) है। इसमें हिन्दी के साथ-साथ संस्कृत एवं आल्हा छंद का प्रयोग किया गया है। दूसरा काव्य-ग्रंथ है- [2]'काव्य दिवाकर'। इसमें रस, छंद, अलंकार आदि के भेद और लक्षणों का वर्णन है।

तीसरा ग्रंथ काव्य रूप में है-[3]'श्री राजिम क्षेत्र माहात्म्य'। यह एक लघु प्रबन्धकाव्य है। युवा कवि पं. सुन्दरलाल शर्मा ने 'श्री राजिम प्रेम पियूष' काव्य एवं 'श्री राजिम क्षेत्र माहात्म्य' में लोककथा एवं ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर भगवान राजीवलोचन की महिमा की कथा को अपने काव्य का विषय बनाया है। कवि ने अपनी कविता का अर्पण भगवान के चरणों में किया है। 'श्री राजिम क्षेत्र महात्म्य' का प्रकाशन, 'हिन्दी प्रेस, प्रयाग' के द्वारा सन् 1915 में किया गया था। अन्य दो काव्यों की पाण्डुलिपियाँ पं. सुन्दरलाल शर्मा स्मारक समिति राजिम के पास संग्रहित है।

एक लोककथा है- पद्मावती पुरी में 'राजिम' नाम की तेलिन जाति की एक भक्तिन निवास करती थी। राजीव लोचन के प्रति अगाध भक्ति के कारण पद्मावती पुरी का नाम 'राजिम' पड़ा। इस दंतकथा का सुंदर काव्यात्मक वर्णन किया गया है। यानी राजिम का प्राचीन नाम पद्मावती पुरी था। आगे चलकर उन्होंने चौथा काव्य लिखा - [4] 'प्रलाप पदावली'। यह कवि की अंत: पुकार से युक्त भजन मालिका को

संबोधित करते हुए सूर, तुलसी और मीरा का जीवन-दर्शन मानो 'प्रलाप पदावली' में दास्य भाव से फूट पड़ा है।

उदा. - *"मन रे तोको काह परी है !*
जो करिहै अपने को बाँटोदार न कोई ॥
क्यों बूड़त गहरो पानी में का बिगड़त तेरोई ॥"[5]

इसी प्रकार 'श्री ध्रुव चरित्र आंख्यान' शिखरिणी छंद में लिखा गया, कीर्तन शैली पर आधारित काव्य-संग्रह है। कथा का प्रारंभ 'उडियाना' छंद से होता है। बालक ध्रुव अपनी माता से विमाता के व्यवहार का वर्णन करता है-

"मैया ! मोहि माता ने मारी !
यह मुँह नहीं गोद पितु लायक
चाहत पकरन सरग उतारी ॥
बाँह पकरि भुँइया मह ठेली
क्रोधित मेरी ओर निहारी ॥

ध्रुव की माता कहती है- जो जगतपिता है, उसकी गोद में बैठने के लिए तप करो-

"बालक ! करहु तप तुम जाय।
जगत को सब तुच्छ पद छन भरहिं पुत्र लगाय।"

इस आख्यान में यदि एक ओर कथ्य की मार्मिक बानगी के साथ भावों की गहराई है, तो दूसरी ओर संपूर्ण काव्य-कलात्मक शिल्प का सुंदर नमूना है। यद्यपि शिखरिणी छंद की प्रमुखता है, परंतु यत्र-तत्र सवैया, उडियाना, भुजंग प्रयात, वसन्ततिलका, त्रोटक, मन्दाक्रान्ता। दोहा आदि छंदों की छटा भी बिखरी पड़ी है। कथा के लय में ये सारे छंद बहते दृष्टिगत होते हैं। गीतात्मक शैली में ब्रजभाषा का आनंद हम लेते हैं।[6] 'ब्राह्मण गीतावली' में ब्राह्मणों के कार्यकलापों पर तीखा प्रहार है।[7] 'सतनामी पुराण' गुरु घासीदास के सिद्धांतों को गीतात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है।[8] 'रघुराजगुण कीर्तनकाव्य' - कीर्तन-शैली में लिखा गया काव्य है।[9] 'काव्यामृत वर्षिणी काव्य'- रसात्मक अनुभूति का आलंकारिक काव्य है।[10] 'करुणापचीसी'- समाज के विविध करुण प्रसंगों की 25 पदों में अभिव्यक्ति है।[11] 'स्वराज गीत'- स्वाधीनता-आन्दोलन से संबंधित 'स्वराज्य' की कामना से लिए गए

ऐसे गीतों का संग्रह है, जो हृदय को आंदोलित करते हैं।[12] 'गाँधी' जी पर एक लंबी कविता है, जो पं. सुन्दरलाल शर्मा पर गाँधी के समग्र प्रभाव को दर्शाती है।[13] 'भजन संग्रह' में कई प्रकार के भजन संकलित है- ये कवित्त हैं, सवैया हैं। दास्यभाव के भजन अधिक हैं। कोई 4 पंक्तियों का पद, तो कोई 6 या 8 पंक्तियों का पद है।[14] 'स्फुट पद संग्रह' के दो संकलन हैं। एक में ग्राम-गीत से लेकर शृंगारगीतों का संग्रह है।[15] दूसरे संग्रह में विविधता है- देश, अँग्रेज़, शिक्षा, नारी, मित्रता, सत्याग्रह, चरखा, मदिरा, कृषक, मेघ, मज़दूर, आदि-आदि।

पं. सुन्दरलाल ने शर्मा खड़ी बोली, ब्रज, अवधी में जो कविताएँ लिखीं, उनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

'गाँधी जी' पर लंबी कविता के कुछ अंश :-

"घर-घर में चरखा को जारी = जल्द करो मेरे वीर सरदार।
तभी भलाई होवे भारत का = इसमें देर न लगवो यार।
दस बरस तो बीति गयो है = तुम्हरे जी छन में डर राय।
तुम्हरे कोई क्या करिहै = इनसे न मचाओ रार।
घर-घर में निमक बनाओ = कानून तोड़ने को हो तैयार।
3 करोड़ भारत के वीरो = एक दिन उमड़ जावो मेरे यार।

0 0 0 0

चराई मत देवो निमक बनावो = गाँधी हुक्म मानो आज।
असहयोग को जल्दी करके = झटके स्वतंत्रता बन जाव।

0 0 0 0

मेरी अकल इतनी नहीं = जो तुमको सिखाऊँ यार।
दुई पद के आल्हा बनाकर = अर्ज करत हूँ बारम्बार।"

'सत्याग्रह' पर लिखे गए एक गीत का उदाहरण -

"छोटे बड़े भइया रे सरकारी अन्याय कानून तोड़ना॥
सरकारी कानून तोड़ना॥
एक तो कानून जंगल की तोड़ो॥
जंगल की तोड़ो॥
सत्याग्रह करके रे जंगल की कानून तोड़ना॥

एक तो कानून नमक की तोड़ो ॥
नमक की तोड़ो ॥
एक तो कानून विदेशी कपड़ा की तोड़ो ।
विदेशी कपड़ा की तोड़ो ॥
एक तो कानून तोड़ो जादा लगान के ।
जादा लगान के ॥
छोटे बड़े भइया रे ॥''

'स्वराज गीत' का एक उदाहरण -

''शराब छोड़ो, कपड़ा विदेशी छोड़ो ॥
खादी से रूप बनाई ॥
स्वतंत्रता को ले लो, भारत की होगी भलाई ॥
घर को छोड़ो, परिवार को छोड़ो ॥
भारत घर होऊ सहाई ॥
स्वयं सेवकों पर नाम लिखावो ॥
बैकुण्ठ का मार्ग बनाई ॥''

'मदिरा' पर लिखी गई कविता का उदा. -

''देखो विचार मन में - मदिरा में क्या धरा है
सारे जगत के दुर्गन्ध - मदिरा में जा भरा है
भारत के पुत्र रोते - गाफिल नशा में सोते
लूट मर्जा विदेशी - मौका तलब पड़ोसी
यों देख गाँधी मन में - धरना धरे परा है ।''

'ग्राम वर्णन' की कुछ पंक्तियाँ -

''सहरों की महिमा साज भरी तुमको सब लोग सुनाते हैं
0 0 0 0
दिन चार जहाँ का भी रहना बस कल्प समान बताते हो
0 0 0 0
वह ग्राम निवासी खुशी खड़ा है, क्यों उसका गम पाते हो ?
नहीं उसके पास हवेली, औ कुछ सजी सजायी लैली है

उठती तरुणाई है केवल, गहना गूंठा का नमा नई
पर उसकी समता करने का रम्भा का भी है काम नई

0 0 0 0

ग्राम निवासी श्रम करने में पहला नंबर पाता है

0 0 0 0

वह 'कुबरी मोहर' का चावल तो थाल परोसे आया है
क्या नहीं मालूम उसको श्रम करके किसने उपजाया है

सन् 1900 के 'रसिक मित्र' में भेजे जाने के लिए लिखी कविता की कुछ पंक्तियाँ -

जो निकलेगा खरा, पहले उसे छाती लगाऊँगा।
अरे जो नायिका के भेद में खूबी दिखाएगा।
बेशर्मी टोकरा सिर से न लाते जो लजावेगा।
गला फाड़ी-गमाके से गपोड़ी गीत गावेगा।
खबर रचना पहिले वही बड़ा इन्नाम पावेगा।
सुना यारो ! न सोते भी उसको कभी भुलाऊँगा॥

"मेघ-स्तव" ! कविता की कुछ पंक्तियाँ :-

हे वारिद ! हे जगप्राण। सादर तुमरे स्वागत करत किसान।
तुम बिन तपन तपाये ग्रीष्मकाल। आठक मास बिताये होत बिहाल।

0 0 0 0

जैसी होय जरूरत जिहिं जिहिं काल। समय-समय कषि पै दीजै जल अहा।
इकदम जल के डारे कृषि सर जात। जमत न धान जमाये पशुन निभात।
जैसे-जैसे ऐसे करिहौ काम। हे वारिद ! है जैहौ तुम बदनाम।
नाहि न अधिक बरसावो-रोको जाहि। नाही नेक भलाई दोनों मांहि।
कीजे ऐसे हे घनराज ! उपाय। जाते भूतल में जनि मापै हाय।
फूलैं फलैं भलैं विध चारो दीस। खावैं खूब उड़ावैं दयं अशीस।
बस इतनो ही कहनो अलम हमार। हौ तुम खुद बुधिमान ज्ञान आगार।
जातें होहि बिगाड़ नहीं कोउ काल। सोईं तोहिं निहोरत सुन्दरलाल।

"पंचक-समूह" पाँच देशप्रेम संबंधी पदों का समूह है जिसमें, एक पद का उदाहरण -

पारसी हो, चाहे हिन्दू हो, जैन हो, चाहे मुहम्मद क्यों न कहावो।
यहाँ कुछ ज्याह का काम नहीं है, ये जाति के भेद भगावो भगावो॥
जो अक्किल है तो यहाँ खरचो - बलवान हो तो भी यहाँ बतलावो।
जो पैसे हों पास, तो पैसे लगावो, स्वदेश की सेवा बजावो बजावो॥

'स्वाभिमान' कविता में देशवासियों के स्वाभिमान को जगाने के लिए ललकारते हुए कवि कुछ याद दिला रहे हैं :-

'लोकमान' ने ही बीज डाल जमाया था जिसे।
'दादाभाई जी' ने बागन में लगाया था जिसे।
'गाँधी जी' ने सींच सांच बढ़ाया था जिसे।
एक ही वर्ष में आकाश छुपाया था जिसे।
मुरझा रहा है वह कल्पवृक्ष गाँधी का।
पौधा स्वराज्य भगवान श्री तिलक जी का।
यह सब देख मुदरदार से। हम ताक रहे।
जड़ रहा कहीं तो कोई कर कोई मजाक रहे।
जिस दवा को कबसे अजमा के देख ली है हमने।
जिस दवा से ही मुरदा को जान दी है हमने।
भई अजमाइशों के पड़ कसे चक्कर में तुमने।
हुवा हुवाया को डाला है चक्कर में तुमने।
बजती थी ताकत से असहयोग की मेरी जब तक।
दहल रहे थे दुश्मनों के हाय! दिल तक तक।

0 0 0

जिस दिन उबाल बत्तीस करोड़ दिल का होगा
कौन है ऐसी ताकत, जवाब जिसका होगा?
किसकी मजाल है टेढ़ी नज़र देखे हमको?

'पतित-प्रार्थना' कविता में लाखों उपेक्षित हरिजनों की ग़रीबी व दरिद्रता से करुणा-कलित कवि ने प्रार्थना की है :-

भैयो ! मतिनों का उद्धार सदा करते रहो जी।
बिछड़े, पतन हुए लोगों को ऊपर लेहु उठाय।
प्रेम समेत इन्हें अपना कर छाती लेहु लगाय।
ये भी धर्म सनातन ही के हैं भैय्या एक अंग।
इनको फेंक मूढ़ता के वश मत हो जाना पंग।

अपने शब्दों को मूर्तरूप देने के लिए पं. सुन्दरलाल ने हरिजनों को छाती से लगा लिया। कट्टरपंथी हिन्दुओं ने इन्हें बहिष्कृत कर दिया। पं. सुन्दरलाल शर्मा ने इस सामाजिक बहिष्कार को चुनौती के रूप में स्वीकार करते हुए लिखा-

"भले बदनाम करैं बदलोग, अरे बरबाद चाहे होय जावो।
देश के हेव से देश निकाल दै, हर्ज नहीं कछु, हांसत जावो॥"

उपर्युक्त सभी उदाहरण पं. सुन्दरलाल शर्मा के बहुमुखी व्यक्तित्व एवं विविध रुचि को दर्शाते हैं। खड़ी बोली, ब्रज व अवधी में लिखे गए साहित्य के साथ मातृभाषा छत्तीसगढ़ी मे लिखे गए काव्य-ग्रंथ आज सबसे अधिक सार्थक व चर्चित हैं। उस समय तक छत्तीसगढ़ी केवल मौखिक बोली थी, लेखन में प्रयुक्त नहीं हुई थी। पं. सुन्दरलाल शर्मा ने छत्तीसगढ़ी बोली को साहित्यिक रूप देकर भाषा का जामा पहनाया। यानी आज से सौ वर्ष पूर्व छत्तीसगढ़ी एक समर्थ भाषा बन गई थी और पं. सुन्दरलाल शर्मा छत्तीसगढ़ी के प्रथम साहित्यकार प्रतिष्ठित हुए।

पं. सुन्दरलाल शर्मा की छत्तीसगढ़ी में लिखी गई कृतियों की कुल संख्या तीन है :-

(1) छत्तीसगढ़ी दान लीला (सन् 1908), नरसिंह प्रेस कलकत्ता.

(2) छत्तीसगढ़ी रामायण (सन् 1907)

(3) कंस वध खंडकाव्य (सन् 1907)

"छत्तीसगढ़ी दानलीला" कृष्ण से संबंधित खण्डकाव्य है, जो भाव, कथ्य और शिल्प - सभी दृष्टि से श्रेष्ठ एवं छत्तीसगढ़ी भाषा की प्रथम साहित्यिक कृति है। दोहा, चौपाई, त्रोटक छंदों में रचित यह काव्य छत्तीसगढ़ी भाषा के सौंदर्य, अप्रतिम

अलंकारों एवं बृहद् शब्द-भंडार का सार्थक प्रमाण है। 'दानलीला' में छत्तीसगढ़ी भाषा की वह खनक सुनाई देती है, जिसे भविष्य में छत्तीसगढ़ी को भाषा न मानने वाले आलोचक भी भाषा मानने को बाध्य होंगे। 'दानलीला' ने छत्तीसगढ़ी भाषा को साहित्यिक भाषा का स्थान दिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। एक-एक शब्द में यहाँ की संस्कृति जीवंत हो गई है।

सन् 1906 में 'दानलीला' कें प्रथम संस्करण में कवि ने इस ग्रंथ-रचना के उद्देश्य के बारे में लिखा- "मुझे वास्तविक आनंद तो उस दिन संप्राप्त होगा, जिस दिन हमारी यह प्यारी मातृभाषा भी अन्य देश भाषाओं की भाँति अपनी उन्नति का सन्मार्ग अवलम्बन करेगी।"

'दानलीला' का दूसरा संस्करण 1915 में प्रकाशित हुआ। उसमें 'दानलीला' की रचना का उद्देश्य एवं मातृभाषा के प्रति मन की पीड़ा अभिव्यक्त हुई है-

"हम भी चाहते हैं कि 'राष्ट्रभाषा' हिन्दी ही हो परंतु प्रांतीय भाषा की उन्नति के बिना शिक्षा का सर्वतोमुखी प्रचार होना कोरी कल्पना मात्र है। भारतवर्ष के अन्यान्य भागों की तुलना में इस प्रांत का बहुत पीछे रहने का मूल कारण मातृभाषा के साहित्य का अभाव ही है।" स्पष्ट है कि पहले तो वे छत्तीसगढ़ को एक प्रांत मानते थे; दूसरे, छत्तीसगढ़ी मातृभाषा के प्रति उनके मन में अटूट प्रेम था, ममता थी।

गोपिकाओं की शारीरिक संरचना एवं अलंकरण, साज-सज्जा का वर्णन:-

उदाहरण -

काजर आँजे अँलगा डारे। मूड़ कोराये पाटी पारे॥
पाँव रचाये बीरा खाये। तरुवा में टिकली चटकाये॥
बड़का टेड़गा खोपा पारे। गोंदा खोंचे गजरा डारे॥

0 0 0

कोनो पैरी चूरा जोंड़ा। कोनो गँठिया कोनो तोड़ा॥
कोनो घुँघरू बस भावैं। छुमछुम-छुमछुम बाजत जावैं॥

0 0 0

चाँदी के सूता झमकाये। गोदना ठाँव-ठाँव गोदवाये॥
दुलरी तिलरी कटवा मोहैं। औ कदमाहीं सुर्रा सोहैं॥

0 0 0

कोनो तिरिया पाँच रचाये। लालमहाउर कोनो देवाये॥
चुटकी चुटका गोड़ सुहावै। चुटचुट चुटचुट बाजत जावै॥

0 0 0

पँउरी पँउरी देह के, रुपस सबे अघात॥
श्याम मिले के खुसी में, फसफसात है जात॥
भिरिन कछोर सबोझन, बस्ती बाहिर आय।
उघरें उघरें जाँघ हर, केरा असन देखाय।

छत्तीसगढ़ी दानलीला के बारे में पं. सुन्दरलाल शर्मा के मित्र एवं हिन्दी के लेखक व पत्रकार पं. माधवराव सप्रे ने दिनांक 17-7-1917 को पं. सुन्दरलाल शर्मा को एकपत्र लिखकर इस खण्डकाव्य की प्रशंसा की- "मुझे विश्वास है कि भगवान कृष्ण की लीला के द्वारा मेरे छत्तीसगढ़ निवासी भाइयों का अवश्य कुछ सुधार होगा। मेरी आशा और भी दृढ़ हो जाती है, जब मैं देखता हूँ कि छत्तीसगढ़ निवासी भाइयों में आपकी इस पुस्तक का कैसा लोकोत्तर आदर है।"

'छत्तीसगढ़ी रामायण' की रचना सन् 1907 में हुई। रामायण की कथा के माध्यम से समाज में नैतिकता का प्रसार करना पं. सुन्दरलाल शर्मा का उद्देश्य था। 'छत्तीसगढ़ी रामायण' की रचना ने पं. सुन्दरलाल को महाकवि का आसन प्रदान किया।

छत्तीसगढ़ी रामायण की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं :-

उदाहरण :- मंगलाचरण

जनम देवैया जगत के, जगपति लाकर जोर,
बेर-बेर विनती करो, होव सहायक मोर,
रामचन्द्र भगवान के कहिहौं कथा बनाय
समुझि सुनिहौ चित्त जगाय॥

पँचगोठ - *घर के भीतर एक दिन बइठे दसरथ राय।*
न्हाय न्हाय वीर पूजा करत, रहिन हृदय हरवाय॥

राजा दशरथ संतान-हीन होने से चिंतित हैं -

मन-मन गुनत दुख राजा, कब बजिहैं घर सोहर बाजा।
कवधौं अइसन सात आहै, कब अतका अस साध बुता है ॥

राजा दशरथ ने गुरु वशिष्ठ को अपनी व्यथा सुनाई। गुरु वशिष्ठ ने कहा- 'राजन उठो, तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी :-

"उमगत भूप हाथ मे झोंकिन, गदगद भइन नयन जल रोकिन।
फिर उठके मुनि मनके पगलागिन, कौशल्यादि सबो बड़भागिन ॥
मुनि महराज धन्यकरि दाया, आज करेब परिपूरण माया।
जब ले जग में जिनगी धरबो, ये उपकार न जियत बिसरबों ॥"

(छत्तीसगढ़ी रामायण, पृ. 2)

राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का जन्म होता है। बालकाण्ड से पं. सुन्दरलाल शर्मा की वर्णन-शैली ग्रामीण संस्कृति से अभिप्रेरित है। बाल्यावस्था का वर्णन देखिए-

"नाचत कूदत, दउरत फुदकत, गिर-गिर उठत हंसत कभू उमगत।
ढुलकत, रोवत, सुसकात, जावैं आवैं तब सब दउर मनावैं।"

(छत्तीसगढ़ी रामायण, पृ. 16)

गुरुकुल का एक चित्र देखिए :-

"कुकरा के बासत उठिन सतेच लक्ष्मण लाल।
गुरुजी आगू जगदपति जागिन रामकृपाल"
कुल्ला करिन नयन मुँह धोइन, टहलिन दिशा गइन भ्रम खोइन।
चिक्कन हाथ पांव मटियाइन, दतवन कोइला घसिन नहाइन।"

(छत्तीसगढ़ी रामायण, पृ. 23)

राम का वनगमन और भरत को राजगद्दी प्राप्त हो, कैकेयी की इस ज़िद्द के पीछे मंथरा की सीख थी। उस मंथरा के बारे में वर्णन है :-

"कैकेयी चेरी लेड़गी, रहिस मंथरा नाव,
बुध बिगाड़ तेखर गइन, शारद देवतन ठांव।"

(छत्तीसगढ़ी रामायण, पृ. 58)

आज से 100 वर्ष पूर्व छत्तीसगढ़ी पूर्ण भाषा के रूप में- काव्य मे प्रयुक्त हुई, यह "छत्तीसगढ़ी रामायण" और "दानलीला" से प्रमाणित होता है। ये दोनों

साहित्यिक कृतियाँ छत्तीसगढ़ी भाषा की स्थापना के आधार-स्तंभ हैं।

कंसवध खण्डकाव्य :-

पं. सुन्दरलाल शर्मा एक सच्चे देशभक्त व राजनीतिज्ञ थे। अपने साहित्य के माध्यम से अपनी जनभावना को जन-जन तक पहुँचाना चाहते थे। यही कारण है कि उन्होंने 'कंसवध खण्डकाव्य' के माध्यम से अपनी समकालीन परिस्थितियों का चित्रण करने का प्रयास किया है। कंस मानो अँग्रेज शासक का प्रतीक है और गुलाम, मस्त प्रजा- पराधीन भारतीयों का। पं. सुन्दरलाल शर्मा जहाँ 'विक्टोरिया वियोग' जैसी जीवनी लिख सकते हैं, जिसमें ब्रिटिश राज्य की अच्छाई का वर्णन है, वहीं वे उसकी दोषपूर्ण नीतियों को भी प्रस्तुत कर सकते हैं, जो 'कंसवध खण्डकाव्य' में है।

'कंसवध खण्डकाव्य' के प्रारंभ में ही कंस के दरबार का इस प्रकार वर्णन हुआ है :-

कंसराय दरबार में बइठे आसन मार।
मुँह जोहत ठाड़े बड़े-बड़े फरिहार॥
झकमकात मोती गुहे सिंहासन के पाय।
सोन्ना में हीरा जड़े शोभा कहे न जाय॥

0 0 0

पैसा जहाँ हराम के बिन मिहनत के सोन।
फूँके बर तेखर भला! मया पिरा है कौन॥
पेटा चोरी करि प्रजा जेला जोरत हाय!!
धन! राजा तेला अरे अइसन देत उड़ाय॥

दोहा -
वही बखत के बेर में श्री नारद मुनिराज।
गिंजरत घूमत आयगै, जहाँ कंस अधिराज॥

(कंसवध, पृ. 01)

शुद्ध छत्तीसगढ़ी भाषा में लिखा गया यह काव्य परंपरागत छंदों के प्रयोग एवं भाषा के लावण्यमय रूप के प्रयोग के कारण सुंदर बन पड़ा है। यह अप्रकाशित खण्डकाव्य अधूरा उपलब्ध है।

पं. सुन्दरलाल शर्मा ने छत्तीसगढ़ी भाषा में स्वतंत्र कविताएँ भी रची हैं, जिनका

'स्फुट पद्य संग्रह' पृथक रूप से संकलित है। उदा. :-

"तइहा तइहा दूध भात ला = जइसे बासी अब खातन गा ॥
यही नमूना सपेटन भइया = अब तो मुँह देखथ रहिथन गा ॥
सरकारी नौकर के बेटा बने हन = आपन दाई ददा ला धराथंन गा ॥
अइसन मूरख अब ले बने हन = हमर नई ये ठिकाना गा ॥
रसद ला नई दन बिगारी ला नई दन = हमर ये मन का करही गा ॥"

पं. सुन्दरलाल शर्मा का नाट्य-साहित्य :-

पं. सुन्दरलाल शर्मा ने 4 नाटकों की रचना की- 1. प्रह्ललाद नाटक, 2. पार्वती परिणय नाटक, 3. सीता परिणय नाटक, 4. विक्रम शशिकला नाटक।

उक्त चारों नाटकों में से प्रह्ललाद नाटक ही उपलब्ध है, अन्य तीन नाटक कहीं भी उपलब्ध नहीं है।

'प्रह्लाद नाटक' की रचना सन् 1906 में की गई। छत्तीसगढ़ी में लिखा गया यह ऐसा नाटक है, जिसका मंचन प्रमुख कस्बों व गाँवों में कई-कई बार किया गया। इस नाटक में पं. सुन्दरलाल शर्मा स्वयं भी अभिनय किया करते थे। इसके गीतों का गायन दर्शकों पर बड़ा ही मार्मिक प्रभाव डालता था। जब पं. सुन्दरलाल शर्मा स्वयं मंच पर अभिनय करते थे, तो वे गाते भी थे। सन् 1905 में 'बंग-भंग' हुआ। घटनाचक्र की यह पृष्ठभूमि ही इस नाटक की प्रेरणा है।

पं. सुन्दरलाल शर्मा का साहित्य विविधता पूर्ण है, उन्होंने साहित्य लेखन की सभी विधाओं पर लेखनी चलाई और सामाजिक यथार्थ से जुड़कर विसंगतियों पर प्रहार किया। शृंगारिक रचनाओं से लेकर राष्ट्रप्रेम से भरपूर रचनाओं का सृजन करके, देशप्रेमी और समाजसुधारक भी बन गए। यदि उन्होंने केवल साहित्य को ही उद्देश्य बनाया होता, तो वे छत्तीसगढ़ी साहित्य के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कहलाते।

एक साथ खड़ी बोली, ब्रज, अवधी और छत्तीसगढ़ी का प्रयोग करते हुए पं. सुन्दरलाल शर्मा ने छत्तीसगढ़ी भाषा को प्रमुखता देकर मातृभाषा व मातृभूमि के प्रति अपना ऋण चुकाया।

❖

छत्तीसगढ़ी पत्रकारिता के जनक व अग्रदूत पं. सुन्दरलाल शर्मा

■ जागेश्वर प्रसाद

छत्तीसगढ़ के गाँधी पं. सुन्दरलाल शर्मा जी बहुआयामी प्रतिभा के धनी कवि, नाटककार, चित्रकार, पत्रकार, समाज-सुधारक, स्वतंत्रता-सेनानी, कृषि-वैज्ञानिक और राष्ट्रभक्त थे। उसी प्रकार वे बहुभाषा के ज्ञाता एवं विद्वान थे- छत्तीसगढ़ी, हिन्दी, उड़िया, बंगला, मराठी, उर्दू, संस्कृत, गुजराती, अँग्रेज़ी आदि।

किसी भी मंदिर-देवालय में लगे कंगूरे (कलश) को लोग दूर से देख लेते हैं और उसका बखान करते थकते भी नहीं, लेकिन उस मंदिर में लगे नींव के पत्थर को न तो देख पाते और न ही उसके महत्त्व पर पैनी दृष्टि डालते। यही बात छत्तीसगढ़ी के आदिकवि, पुरोधा, छत्तीसगढ़ी-पत्रकारिता के जनक व अग्रदूत पं. सुन्दरलाल शर्मा जी पर सोलहों आने लागू होती है। शर्मा जी छत्तीसगढ़ी भाषा-साहित्य और पत्रकारिता रूपी त्रिमूर्ति-भवन के नींव के पत्थर हैं। जिसमें छत्तीसगढ़ी भाषा-साहित्य, पत्रकारिता और इतिहास की मंज़िलें तैयार हो रही हैं।

पं. सुन्दरलाल शर्मा महानदी के त्रिवेणी संगम के निकट चंद्रसूर गाँव में पौष अमावस्या तिथि और दिनांक 21 दिसम्बर 1881 को जन्मे थे। उन्होंने अपनी मातृभूमि के लोगों को साहित्य-सेवा, सुराजी-आन्दोलन और समाज-सुधार की त्रिवेणी संगम की धारा से सराबोर कर के आने वाली पीढ़ी को दिशा दिखाने का आदर्श प्रस्तुत किया।

सन् 1922 में असहयोग आंदोलन के चलते उनको 1 वर्ष की जेल की सजा हुई। जेल प्रवास के दौरान उनकी लेखनी फिर तेज़ हुई और जेल में ही वे 'श्रीकृष्ण जन्म स्थान पत्रिका' (हस्तलिखित) निकालते रहे। प्रत्येक अंक 18-20 पृष्ठ का हुआ करता था। मुख्य पृष्ठ पर उन्हीं का बनाया हुआ चित्र होता था। साथ ही साथ प्रत्येक अंक में 'पुरौनी शीर्ष' से कॉलम भी प्रकाशित करते थे।

पं. सुन्दरलाल शर्मा की पत्रकारिता और साहित्य-सेवा के माध्यम से छत्तीसगढ़ को "एक प्रांत और छत्तीसगढ़ी को अंचल की मातृभाषा के रूप में मान्यता दिलाकर शिक्षा और जनजागरण का माध्यम बनाना चाहते थे।" शर्मा जी पत्रकारिता एवं

साहित्य-साधना को मिशन मानते थे। दोनों के माध्यम से समाज को जाग्रत करना, संस्कारित करना, सामाजिक समरसता स्थापित करना तथा देशवासियों को सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक गुलामी की बेड़ी से मुक्ति दिलाना चाहते थे। उनका सारा जीवन राष्ट्रभक्ति, मानवसेवा, और भारतीय संस्कृति के लिए पूर्ण रूप से समर्पित था।

पं. सुन्दरलाल शर्मा जी 'छत्तीसगढ़ी पत्रकारिता के अग्रदूत' है।

उन्होंने छत्तीसगढ़ी पत्रकारिता पाठशाला की नींव सन् 1920-21 में हस्तलिखित छत्तीसगढ़ी मासिक पत्रिका "दुलरुवा" निकालकर रची थी।

उन्होंने संपूर्ण लेखन कार्य सन् 1894 से लेकर 1912 तक अलग-अलग पत्र-पत्रिकाओं में किया था।

सन् 1898 में कानपुर से प्रकाशित 'रसिक मित्र' पत्रिका में उनकी प्रकाशित कविता में उनका उपनाम 'सुन्दर कवि' और 'द्विजराज' मिलता है।

शर्मा जी छत्तीसगढ़ी, हिन्दी, अँग्रेजी के अलावा बंगाली,उूर्द, फारसी के ज्ञाता थे जिसके चलते हिन्दी, मराठी, बंगाली, अँग्रेज़ी और उर्दू की पत्र-पत्रिकाएँ मँगाया करते थे।

❖

लेखक-परिचय

प्रो. बी.पी. चन्द्रा	कुलपति, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर
डॉ. चित्त रंजन कर	अध्यक्ष, साहित्य एवं भाषा-अध्ययनशाला, पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर
स्व. हरि ठाकुर	हिंदी और छत्तीसगढ़ी के जाने-माने साहित्यकार, इतिहासकार, और गोवा मुक्ति आंदोलन के सेनानी
आचार्य सरयूकांत झा	पूर्व प्राचार्य, पुरानी बस्ती, रायपुर
केयूर भूषण	पूर्व सांसद एवं वरिष्ठ साहित्यकार
ललित मिश्रा	युवा लेखक एवं चिंतक, कैलाशपुरी, रायपुर
डॉ. प्रभंजन शास्त्री	सेवानिवृत्त प्राध्यापक, बागबाहरा (छत्तीसगढ़)
त्रिभुवन पांडेय	लेखक एवं व्यंग्यकार,सोरिद नगर/धमतरी, 493773 (छ.ग.)
श्रीमती शान्ति यदु	संपादक, ऋचा-शक्ति, नलघर चौक, बैरन बाजार, रायपुर
डॉ.परदेशी राम वर्मा	कथाकार एवं चिंतक, भिलाईनगर
डॉ बिहारी लाल साहू	प्राध्यापक , 17, किरोड़ीमल कॉलोनी, रायगढ़ (छ.ग.)
आशिष सिंह	युवा लेखक एवं चिंतक, कंकालीपारा, रायपुर
डॉ. सविता मिश्रा	सहायक प्राध्यापक, शा.दू.ब.महिला (स्वशासी) स्ना. महाविद्यालय रायपुर (छत्तीसगढ़)
डॉ. बलदेव	पूर्व प्राचार्य एवं समीक्षक, स्टेडियम के पास, श्रीराम कॉलोनी, रायगढ़
डॉ. जीवन यदु	कवि, दाऊचौरा, खैरागढ़
रमाकांत श्रीवास्तव	वरिष्ठ समीक्षक, 209, दाऊचौरा, खैरागढ़ (छ.ग.)
डॉ. रमेन्द्रनाथ मिश्र	प्राध्यापक, इतिहास विभाग, रविवि, रायपुर
डॉ. रामकुमार बेहार	प्राचार्य, संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर
डॉ. सुधीर शर्मा	संपादक, शोध-प्रकल्प, 280, सेक्टर-4, दीनदयाल उपाध्याय नगर, रायपुर-10
नंदकिशोर तिवारी	संपादक, छत्तीसगढ़ी-लोकाक्षर, बिलासपुर
मुकुंद कौशल	पद्मनाभपुर, दुर्ग (छ.ग.)
डॉ. गोरे लाल चंदेल	प्राध्यापक, हिंदी विभाग, इंदिरा संगीत वि.वि., खैरागढ़
डॉ. सत्यभामा आड़िल	अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, शा.दू.ब.म.,स्ना.महा., रायपुर
जागेश्वर प्रसाद	हांडीपारा, रायपुर

डॉ. रमेश कुंतल मेघ ने लिखा है-
''परम्परा से विच्छेद में ही समसामयिकता में अनुप्रवेश निहित है। इसी तरह केवल मानसिक क्रियात्मकता का अर्थ कर्म से अलगाव है। कर्म से अलगाव कार्य के उल्लास से वंचित कर देता है।'' बीसवीं सदी का प्रारंभ परंपराओं को चुनौती देने से हुआ। रचनाकारों ने परंपराओं को जस का तस स्वीकार नहीं किया। या तो उन्हें तोड़ा या उन्हें विकसित. किया। इस संदर्भ में सुंदरलाल शर्मा, माखन लाल चतुर्वेदी और सुभद्राकुमारी चौहान की रचनाधर्मिता का मूल्यांकन तभी संभव है, जब उनके कवि-कर्म और उनकी आंदोलन-धर्मिता को एक साथ परखने का उपक्रम किया जाय। ये तीनों समकालीन कवि थे और भारत के स्वाधीनता-आंदोलन में शामिल थे। यह स्वाभाविक है कि उनके कवि-कर्म पर उस आंदोलन का प्रभाव था। माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्राकुमारी चौहान की रचनाएँ पाठकों के सामने थीं इसलिए कवि के रूप में उनका मूल्यांकन सरल था, किन्तु सुंदरलाल शर्मा की रचना 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' तो सामान्य जन को उपलब्ध थी किन्तु शेष रचनाएँ सामने नहीं आई थी। पुरुषोत्तम अनासक्त ने उन्हें 21 रचनाओं का प्रणेता बतलाया है, पर शायद आज भी वे रचनाएँ पाठकों-समालोचकों के सामने नहीं आई हैं।

पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर

PT. RAVISHANKAR SHUKLA UNIVERSITY, RAIPUR

अग्ने नय सुपथा राये